॥ ओ३म् ॥

शरीर क्रिया विज्ञान एवं रचना-१

उत्तराखण्ड संस्कृत विश्वविद्यालय के योगाचार्य (प्रथम सेमेस्टर) एवं
पी.जी. डिप्लोमा (प्रथम सेमेस्टर) चतुर्थ प्रश्न पत्र
के पाठ्यक्रमानुरूप प्रस्तुति

प्रकाशक

आचार्य प्रणवानन्द विश्वनीड़-न्यास
गुरुकुल पौन्धा, दून वाटिका-२, पौन्धा, देहरादून (उ.ख.)

न चौरहार्यं न च राजहार्यं
न भ्रातृभाज्यं न च भारकारी।
व्यये कृते वर्धते एव नित्यं
विद्याधनं सर्वधनप्रधानम्॥

प्रकाशक - आचार्य प्रणवानन्द विश्वनीड-न्यास,
दूनवाटिका-२, गुरुकुलपौन्धा,
देहरादून (उत्तराखण्ड)
जङ्गमवाणी-०९४११११०६१०४, ९४११३१०५३०
अणुसङ्केत-arsh.jyoti@yahoo.in
विश्वजालपुट-www.pranwanand.org

© सर्वाधिकारसुरक्षितम्

संकलयिता - चन्द्रभूषण योगाचार्य
संस्करण - प्रथमवार/ २०१८ (अक्टूबर)
मूल्य - ₹५०.००

प्राप्तिस्थान -

१. श्रीमद् दयानन्द आर्ष ज्योतिर्मठ गुरुकुल
पौन्धा, देहरादून (उत्तराखण्ड)-२४८००७

प्रथम सेमेस्टर (चतुर्थ प्रश्न-पत्र)

शरीर क्रिया विज्ञान एवं रचना-1

कोशिकाः- जीवन की मूलभूत इकाई

मानव शरीर असंख्य सूक्ष्म इकाईयों से बना है, जिन्हें कोशिकाऐं कहा जाता है। कोशिका शरीर का सूक्ष्मतम रूप हैं। यह शरीर की एक मूलभूत रचनात्मक एवं क्रियात्मक इकाई है, जो स्वतंत्र रूप से जीवन की क्रियाओं को चलाने की क्षमता रखती है।

शरीर के विभिन्न अंगों की कोशिकाओं में भिन्नता होती है परन्तु समस्त कोशिकाओं की मूलभूत संरचना एकसमान ही होती है, इन्हें बिना माइक्रोस्कोप के देखा नहीं जा सकता है। इन्हें स्टेन करने के पश्चात् स्लाइड पर करके ही देखा जा सकता है। स्टेन करने से कोशिका के भिन्न-भिन्न भाग भिन्न-भिन्न रंग ग्रहण कर लेते हैं तथा सभी भाग स्पष्ट एवं एक दूसरे से भिन्न-भिन्न दिखाई देने लगते हैं। कोशिका की रचना के अंतर्गत कई एक सम्मिलित अंग हैं, इन्हीं अंगों के सामूहिक रूप को कोशिका कहते हैं। कार्यों की विभिन्नता के कारण कोशिकाओं के आकार एवं आकृति में अंतर होता है, परन्तु कुछ रचनात्मक विशिष्ट गुण उन सभी में समान रहते हैं।

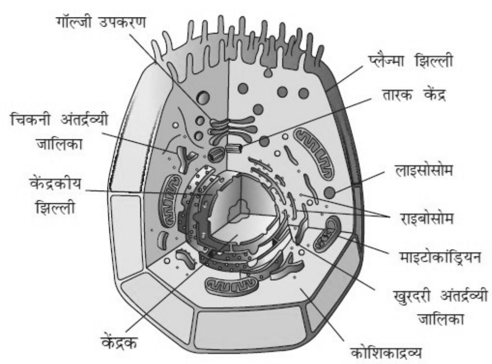

<u>**चित्र संख्या- 1 (मानव कोशिका)**</u>

1. कोशिका कला या भित्ति
2. कोशिकाद्रव्य
3. केन्द्रक

1. कोशिका कला– यह एक पतली झिल्लि है जो सबसे बाहरी परत को बनाती है, इसे प्लाज्मा मेम्ब्रेन भी कहा जाता है। यह वसा, प्रोटीन तथा लवणों की दो परतों वाली झिल्ली है। इसकी उत्पत्ति कोशिकाद्रव्य से होती है। कोशिका कला से ही समस्त कोशिका एक दूसरे से अलग रहती हैं। परन्तु कोशिका कला इतनी सूक्ष्म होती है तथा समीपस्थ कोशिका की कोशिका भित्ति से इतनी अधिक सट जाती है, कि दोनों कोशिकाओं के मध्य केवल एक भित्ति ही दिखाई देती है। यह पारदर्शी तथा अर्द्धपारगम्य होती है।

कोशिका कला के कार्य–

1. कोशिका की कोमल संरचनाओं की रक्षा करती है।
2. बाह्य उत्तेजनाओं को ग्रहण करती है।
3. इससे होकर ही कोशिका रक्त से पो ाक तत्वों एवं ऑक्सीजन को ग्रहण करती है और त्याज्य पदार्थ कार्बन डाईआक्साइड को बाहर निकालती है।
4. इससे होकर कोशिका के शरीरसे विकारों का निष्कासन होता है।

वस्तुत: कोशिका के भीतर बाहर आने जाने वाले पदार्थो, जैसे जल, आक्सीजन, कार्बनडाइआक्साइड तथा ग्लूकोज आदि पर कोशिका कला का पर्ण नियंत्रण रहता है और इस प्रकार यह जीवद्रव्य की रासायनिक संरचना को बनाये रखने में सहायक होती है।

कोशिकाद्रव्य या साइटोप्लाज्म

केन्द्रक के अतिरिक्त, कोशिका के भीतर के समस्त भाग को कोशिकाद्रव्य कहते हैं। कोशिका का जीवन इसी साइटोप्लाज्म पर ही आधारित है एवं इसी पर ही कोशिका की समस्त मूलभूत जीवन क्रियाएँ वृद्धि, श्वसन, गतिशीलता, पाचन, उत्सर्जन, चयापचय, उत्तेजनशीलता तथा प्रजनन आदि निर्भर करती हैं। जीवितावस्था में साइटोप्लाज्म में अनेक रासायनिक क्रियाएँ अति तीव्र गति से होती रहती हैं, जिसके फलस्वरूप कोशिकाएँ जीवित रहती हैं। जीवितावस्था में साइटोप्लाज्म की रचना देखना होता है। अत: इसके गठन कुछ पता नहीं लगता है। यदि इसका विश्लेषण करने का प्रयत्न किया जाय तो यह नष्ट हो जाता है और कुछ रासायनिक परिवर्तन हो जाते हैं। इसके नष्ट हो जाने पर समस्त जैविक क्रियाएँ रूक जाती हैं, जिसके फलस्वरूप प्राणी की मृत्यु हो जाती है। साइटोप्लाज्म में अपनी दशा को परिवर्तित करने की क्षमता पाई जाती है। इस कारण भिन्न भिन्न अवस्थाओं में इसकी रचना में भिन्नता पाई जाती है। अत: विभिन्न वैज्ञानिकों ने इसकी रचना अलग अलग तरह की बतायी है। कुछ वैज्ञानिकों के मतानुसार यह एक रंगहीन अर्द्धपारदर्शक, चिपचिपा, गाढ़ा द्रव होता है। कभी यह समांशी दिखाई देता है, जिसके बीच बीच मे तरल, रचनाविहीन पदार्थ भरा होता है।

कभी-कभी यह फेनदार भी दिखाई देता है और कभी-कभी इसमें तरल पदार्थ के बडे-बडे गोल कण तैरते दिखाई देते हैं। अधिकतर वैज्ञानिकों ने इसकी रचना जाल-युक्त बतायी है। उनके अनुसार इसमें सूत्रों का जाल फैला रहता है, जिसके कोष्ठों के भीतर एक स्वच्छ समांशी पदार्थ भरा होता है, यह पदार्थ स्वच्छद्रव्य कहलाता है। इसके अत्यन्त छोटो-छोटे कण बराबर ब्राउनियन गति से गतिमान रहते हैं।

कोशिका के कोशिका द्रव्य मे कार्बनिक पदार्थ-प्रोटीन, कोर्बोहाइर्डेट, जो दो प्रकार के होते हैं- (1) घुलनशील कार्बोहाइर्डेट-ग्लूकोज, माल्टोज, सुक्रोज आदि (2) अघुलनशील काब्रोहाइर्डेट स्टार्च, जैसे ग्लाइकोजन एवं सेल्युलोज विद्यमान रहते हैं। इसमे वसा भी पाई जाती है। अकार्बनिक पदार्थ जैसे- फास्फेट, क्लोराइड, सोडियम तथा पोटेशियम भी इसमें रहते हैं। विभिन्न प्रकार के विटामिन, पेप्सिन तथा ट्रिप्सिन आदि एन्जाइम भी पाये जाते हैं। उपर्युक्त यमस्त पदार्थ साईटोप्लाज्म के अजीवित भाग हैं, **निर्जीवास द्रव्य** कहा जाता है।

साइटोप्लाज्म में कुछ सक्रिय रचनाएँ भी होती है, जिन्हें सक्रिय-अगंक कहा जाता है, जिनकी उपस्थिति समस्त कोशिकाओं में होना अनिवार्य है? जो निम्नलिखित है।

(1) कलामय अगंक

- प्लाज्मा मेम्ब्रेन
- अन्तर्द्रव्यी जालिका
- गाल्जी उपकरण
- माइटोकाण्ड्रिया
- लाइसोसोम

(2) साइटोप्लाज्मिक राइबोन्यूक्लिक एसिड या राइबोसोम

(3) सेन्ट्रोसोम

(4) विविध तंतुक, तन्तु एवं सूक्ष्म नलिकाएँ [प्लाज्मोसिन, रिक्तिकायें, कणिकाएँ]

(1) कलामय अगंक

प्लाज्मा मेम्ब्रेन-पूर्व में वर्णित कोशिका कला देखें।

अन्तर्द्रव्यी जालिका

यह साइटोप्लाज्म में विद्यमान कलामय नलिकाओं की जाल के समान एक संरचना है। यह दो प्रकार की होती है, एक रूक्ष या खुरदरी सतह वाली तथा दूसरी चिकनी सतह वाली। रूक्ष सतह वाली एण्डोप्लाज्मिक रेटिकुलम पर राइबोसोम के कण पंक्तियों में सटे रहते हैं। चिकनी एण्डोप्लाज्मिक रेटिकुलम में लिपिड़ एवं स्टेरायड़ हार्मोन का

संश्लेषण या निर्माण होता है तथा इसका सम्बन्ध कुछ औषधियों के निर्विशीकरण से भी होता है।

ये पेशीय कोशिकाओं में आवेगों का संवाहन करती हैं, यकृतीय कोशिकाओं में प्रोटीन तथा कार्ब्रोहाइड्रेट के संश्लेषण का कार्य करती हैं, आमाशय में हाइड्रोक्लोरिक एसिड को स्रावित करती है।

गॉल्जी उपकरण-

यह साइटोप्लाज्म में स्थित कलाओं का एक समूह है, जो भौतिक रूप से एवं क्रियात्मक रूप से एण्डोप्लाज्मिक रेटिकुलम से सम्बद्ध होता है। ये प्राय: कोशिकाओं के केन्द्रक के समीप स्थित होते हैं। इनकी रासायनिक संरचना में लाइपोप्रोटीन अधिक रहता है।

गॉल्जी उपकरण का सम्बन्ध कोशिका की रासयनिक क्रियाओं, विशेषकर स्रावण की क्रिया से होता है। यह ग्लाइकोप्रोटीन स्राव के पॉलीसैकेराइड अंश का संश्लेषण भी करता है। इसकी आकृति, आकार एवं स्थिति समस्त कोशिका की सक्रियता के अनुसार बदलती है। कोशिका में उत्पन्न हुए स्रावी उत्पाद इसी गॉल्जी उपकरण में एकत्रित होते हैं तथा कोशिका कला तक ले जाकर इन्हें बाहर छोड़ दिया जाता है।

माइटोकॉण्ड्रिया-

साइटोप्लाज्म में विभिन्न आकारों की अनेकों छोटी-छोटी रचनाएँ-अण्डाकार या रॉड के समान रचनाएँ चारों ओर बिखरी रहती हैं, जिन्हें माइटोकाण्ड्रिया कहते हैं। जीवित कोशिका में ये इधर-उधर घूमते रहते हैं। इनकी संख्या तथा आकार में परिवर्तन होता रहता है और यह विभाजित भी हो जाते हैं। कभी-कभी ये समूह रूप में एकत्रित रहते हैं तथा कभी-कभी बिखरे रहते हैं।

माइटोकाण्ड्रिया को कोशिका का ऊर्जा-ग्रह (पावर-हाउस) कहा जाता है, क्योंकि ये कोशिका के भीतर पचकर आये हुए भोजन का आक्सीकरण करके उसकी संग्रहीत ऊर्जा को विमुक्त कर ए.टी.पी. में संग्रहित करते हैं, जिससे कोशिओं को विभिन्न जैविक क्रियाओं के लिए ऊर्जा मिलती है। कोशिका का यही अंगक 'कोशिका-श्वसन' के लिए उत्तरदायी होता है। इनका प्रोटीन संश्लेषण तथा लिपिड चयापचय के साथ भी संम्बन्ध होता है।

लाइसोसोम–

लाइसोसोम साइटोप्लाज्म में स्थित कलामयी स्फोटिकाएँ होती हैं, जो अण्डाकार या गोलकार थैले के समान होती हैं। इन रचनाओं में हाइड्रोक्लोरिक एन्जाइम की उत्पत्ति होती है जो कोशिका के भीतर प्रोटीन, कोर्बोहाइड्रेट, वसा एवं न्यूक्लिइक एसिड (R.N.A.,D.N.A) बडे अणुओं को छोटे–छोटे खण्डों में विभाजित करने में सहायता करती है, जो बाद में माइटोकाण्ड्रिया द्वारा ऑक्सीकृत होते हैं। किन्हीं विशेष परिस्थितियों में लाइसोसोम अपने अंतरपदार्थ को भी पचा जाते हैं, इसीलिए इन्हें **'आत्महत्या की थैली'** भी कहा जाता है। इनका प्रधान कार्य 'आन्तरकोशिकीय पाचन' से है, इसीलिए इन्हें 'पाचन उपकरण' भी कहते हैं। क्षतिग्रस्त कोशिकाओं को भी लाइसोसोम पचा जाता है। श्वेत रक्त कोशिकाओं में यह ऐसे एन्जाइम उत्पन्न करते हैं, जो शूक्ष्म जीवों को पचा जाते हैं। जीवाणु भक्षण लाइसोसोम की एक अद्‌भुत एवं विलक्षण क्रिया है। अत: यह रोग प्रतिरोधक क्षमता के लिए आवश्यक भी है।

(2) राइबोसोम–

राइबोसोम स्वभावत: राइबोन्यूक्लियोप्रोटीन होते हैं तथा ये समस्त साइटोप्लाज्म या कोशिकाद्रव्य में एकाकी अथवा समूहों में बिखरे हुए रहते हैं। राइबोसोम राइबोन्यूक्लिक एसिड से भरपूर होते हैं, तथा समस्त कोशिका का 60 प्रतिशत प्रोटीन इन्हीं में रहता है। राबोसोम प्रोटीन संश्लेषण से सम्बन्धित हैं, इसीलिए इन्हें **'प्रोटीन फैक्टरी'** कहा जाता है।

(3) सेन्ट्रोसोम–

सेन्ट्रोसोम न्यूक्लियस के समीप छड़ की आकृति की एक रचना है। यह धागों के समान चारों ओर निकली हुई रचना से घिरी रहती है। इसमें कुछ अधिक गहरे रंग की दो गोलाकार रचनाएँ और होती हैं, जिन्हें सेन्ट्रियोल कहते हैं, सेन्ट्रोसोम इन्हीं सेन्ट्रियोल्स द्वारा कोशिका विभाजन में महत्वपूर्ण भाग लेता है।

(4) विविध रचनाएँ:

प्लाज्मोसिन–

प्लाज्मोसिन साइटोप्लाज्म का सदैव विद्यमान रहने वाला विशिष्ट संघटन है।

रिक्तिकाएँ–

यह कोशिका में छोटे–छोटे रिक्त स्थान होते हैं इनमे जल के समान द्रव्य भरा रहता है इन्हें रिक्तिकाएँ कहते हैं। ये जीवद्रव्य में जल पर नियंत्रण रखती हैं कोशिकाद्रव्य में जल की मात्रा अधिक हो जाने पर यह जल को बाहर निकाल देने में सक्षम होती हैं।

कणिकाएँ-

साइटोप्लाज्म में उपर्युक्त रचनाओं के अतिरिक्त कोशिकाओं की किसी फिजियोलॉजीकल अवस्था में, जैसे धूप में तपने के पश्चात् त्वचा की एपीथीलियल कोशिकाओं में पिगमेंट के कण प्रकट हो जाते हैं। इनके अतिरिक्त कुछ स्रावी कण भी उत्पन्न हो जाते हैं।

आन्तरकोशिक तन्तुक-

इसमें लम्ब आकार के प्रोटीन के कण प्रकट होते हैं जिनमें डीऑक्सीराइबोन्यूक्लियो प्रोटीन अत्यधिक मात्रा में उपस्थित रहता है। ये कण आपस में लम्बाई में सटे रहते हैं तथा 'आन्तरकोशिक तन्तु' का निर्माण करते हैं। इसके उदाहरण हैं- एपीथीलियल कोशिकाओं के टोनोफाइब्रिल, पेशी कोशिकाओं के पेशी तन्तुक तथा तन्त्रिका कोशिकाओं के तन्त्रिका तन्तु।

एण्डोप्लाज्मिक रैटिकुलम-

यह कोशिकाद्रव्य में छोटी-छोटी नलिकाओं की एक श्रृंखला होती होती है इनमें स्टेरायड हार्मोन का निर्माण होता है इनमें कुछ ऐसे प्रोटीन बनते हैं जो औषधियों के र्निविषीकरण में सहायक होते हैं। इनके अन्दर राइबोसोम भरे होते हैं। जो राइबोन्युक्लिक एसिड से बने होते हैं।

केन्द्रक या न्यूक्लियसः-

लाल रक्त कोशिकाओं को छोडकर शरीर की समस्त कोशिकाओं के मध्य भाग में एक गोलाकार रचना होती है, जिसे केन्द्रक कहते हैं। कंकालीय पेशी एंव कुछ अन्य कोशिकाओं में एक से अधिक केन्द्रक होते हैं। केन्द्रक कोशिका का सबसे बडा अंग होता है तथा यह कोशिका कला या प्लाज्मा मेम्ब्रेन के समान एक दोहरी परत वाली मेम्ब्रेन जिसे केन्द्रक कला कहते हैं, से चारों ओर से घिरा रहता है, जिससे केन्द्रक साइटोप्लाज्म से अलग रहता है। न्यूक्लियर मेम्ब्रेन मे छोटे-छोटे छिद्र होते हैं जिससे कुछ ही पदार्थ इसके और साइटोप्लाज्म के बीच आ-जा सकते हैं एवं इन पदार्थो पर नियन्त्रण रखती है।

न्यूक्लियस के भीतर विद्यमान द्रव को न्यूक्लियो प्लाज्म या केन्द्रकद्रव्य कहते हैं, जो प्रोटोप्लाज्म का ही भाग होता है। यह कोशिका की वृद्धि एंव कोशिका को दो सन्तति कोशिकाओं में विभाजन करने के लिए आवश्यक सूचनाएँ जमा करता है।

न्यूक्लियस के भीतर सूत्रवत रचनाएँ पायी जाती हैं, जिन्हें गुणसूत्र कहते हैं,जो कि क्रोमेटिन से बने होते हैं। प्रत्येक क्रोमेटिन मे कई क्रोमोसोम होते हैं। इन क्रोमोसोमों पर लडी के रूप में अनेकों सूक्ष्म रचनाएँ विद्यमान रहती हैं जिन्हें **जीन** कहते हैं। इन्हीं जीन्स के द्वारा क्रोमोसोम एक वंश या पीढी से दूसरे वशं तक आनुवाशिक गुणों को पहुँचाने का

कार्य करते हैं। न्यूक्लियस के भीतर एक-एक छोटी सी गोल रचना होती है, जिसे उपकेन्द्रक कहते हैं।

ऊतक
(Tissues)

जैसा कि ज्ञात है कि मानव एक बहुकोशीय प्राणी है, जिसमें जिसमें कोशिकाएँ रचना तथा कार्य में एक-दूसरे से भिन्न होती हैं। एक प्रकार की कोशिकाएँ, एक ही प्रकार का कार्य करती हैं और एक ही वर्ग के ऊतकों जैसे-अस्थि, उपास्थि पेशी आदि का निर्माण करती हैं। संक्षेप में '**समान रचना तथा समान कार्यो वाली कोशिकाओं के समूह को ऊतक कहते हैं।**' प्रत्येक ऊतक का अपना विशिष्ट (Specialised) कार्य होता है। ऊतक का निर्माण करते समय कोशिकाएँ आपस में एक-दूसरे से एक विशेष अन्तराकोशिकी पदार्थ द्वारा जुड़ी और सम्बन्धित रहती हैं। बहुत से ऊतक मिलकर शरीर शरीर के अंगों (Organs), जैसे- आमाशय, गुर्दे, यकृत, मस्तिष्क आदि का निर्माण करते हैं। प्रत्येक अंग का भी अपना विशिष्ट कार्य होता है। विभिन्न अंग परस्पर मिलकर किसी संस्थान का निर्माण करते हैं जो किसी विशेष कार्य को करता है, जैसे-नाक, स्वरयन्त्र, श्वास प्रणाल एवं फेफड़े मिलकर श्वसन संस्थान (तन्त्र) का निर्माण करते हैं, जो कि शरीर एवं वायुमण्डल के बीच ऑक्सीजन एवं कार्बन डाइऑक्साइड का आदान-प्रदान करता है।

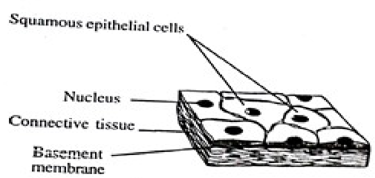

चित्र 5.1 शल्की उपकला (Pavement epithelium)

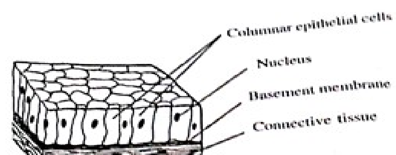

चित्र 5.2 स्तम्भाकार उपकला (Columnar epithelium)

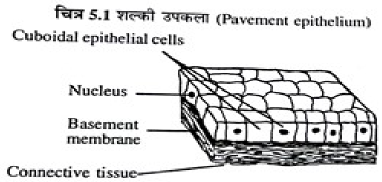

चित्र 5.3 घनाकार उपकला (Cuboidal epithelium)

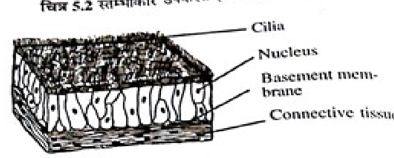

चित्र 5.4 रोमक स्तरित उपकला (Pseudostratified ciliated epithelium)

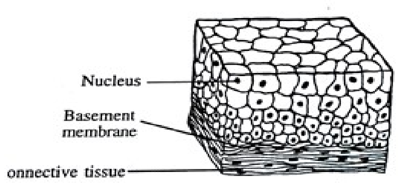

चित्र 5.5 अन्तरवर्ती उपकला (Transitional epithelium)

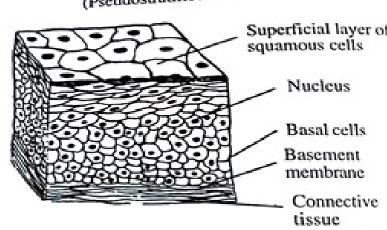

चित्र 5.6 स्तरित शल्की उपकला (Stratified squamous epithelium)

मानव शरीर का निर्माण निम्नलिखित प्रारम्भिक ऊतकों के मिलने से होता है–

(1) उपकला ऊतक

(2) संयोजी ऊतक

(3) पेशीय ऊतक

(4) तंन्त्रिका ऊतक

(5) ग्रन्थि ऊतक

(6) कंकालीय ऊतक

उपकला ऊतक (Epithelial tissues)-

उपकला ऊतक या एपीथीलियम विभिन्न आकार की कोशिकाओं से बनने वाला वह ऊतक है जो शरीर की सतह जैसे त्वचा तथा खोखले अंगों के निर्माण के क्रम में अंदर की सतह को ढ़कता है। शरीर की त्वचा का निर्माण भी इन्ही ऊतक के द्वारा होता है। सभी कोशिकाओं के बीच एक पतली परत होती है जिसे बेसमेटं मेम्ब्रेन कहा जाता है। बेसमेन्ट मेम्ब्रेन के द्वारा यह अन्य ऊतकों से अलग रहता है। उपकला ऊतक मुख्य रूप से निम्न 2 प्रकार के होते हैं–

क– सरल उपकला ऊतक (Simple epithelial tissues)

ख– यौगिक उपकला ऊतक (Compound epithelial tissues)

क– सरल उपकला ऊतक (Simple epithelial tissues):– यह चार प्रकार के होते है–

–शल्की उपकला

–घनाकार उपकला

–स्तम्भाकार उपकला

–रोमक उपकला

शल्की उपकला - यह चपटी कोशिकाओं की एक परत द्वारा बनी होती हैं, ये कोशिकाएँ शूक्ष्म पतली प्लेटों जैसी लगती है । यह आपस में एक दूसरे से इस प्रकार जुडते हैं कि संगमरमर की फर्श की तरह लगती हैं। अतः इनसे काफी पतली झिल्ली का निर्माण होता है। फेफडों के वायु कोष्ठों का निर्माण इन्हीं कोशिकाओं के द्वारा होता है।

घनाकार उपकला– यह घनाकार कोशिकाओं द्वारा बनती है तथा यह भी एक परत की होती है किन्तु इसकी लम्बाई चौडाई एक बराबर होती है यह कोशिकाएँ बेसमेंट मैम्ब्रेन पर आपस में काफी सटी होती हैं इन कोशिकाओं के द्वारा लार ग्रन्थि, थॉयरायड ग्रन्थि, श्वास नलिकाओं तथा वृक्क की नलिकाओं का निर्माण होता है।

स्तम्भाकार उपकला- यह बेसमेंट मैम्ब्रेन पर टिकी हुयी एक परत वाली आयताकार कोशिका होती है इन कोशिकाओं की उँचाई चौडाई से अधिक होती है यह कोशिकाएँ मुख्यत: बडी आँत की भीतरी सतह पर लगी पायी जाती हैं जहाँ पर यह भोजन के पचे हुए भागों का अवशोषण करती हैं।

ऐसी कोशिकाएँ पित्ताशय, मूत्र-जनन के कुछ भाग, श्वास नली में पायी जाती हैं या ऐसी जगह पायी जाती हैं जहाँ म्यूकस की मात्रा ज्यादा बनती है।

रोमक उपकला- यह काफी लम्बी होती है परन्तु इन कोशिकाओं के सिर पर 25 से 30 शूक्ष्म बालों जैसी रचना पायी जाती हैं जिसे रोमक कहा जाता है। यह बालों जैसी रचना एक ही दिशा में गतिशील होती है तथा यह दिशा बाहरी छोर की ओर होती है जिससे अन्दर की वस्तुएँ बाहर की ओर आसानी से निकल जाती हैं ऐसी कोशिकाएँ सामान्यत: श्वसनीय पथ में तथा डिम्बवाहिनियों में पायी जाती हैं। डिम्ब वाहिनीयों में इन रोमों के गतिशील होने पर डिम्ब या अण्डाणु गर्भाशय की ओर चले आते हैं। तथा यही रोमक कोशिकाएँ श्वसन पथ में म्यूकस या धूल को मुख से बाहर लाते हैं।

ख- यौगिक उपकला ऊतक (Compound epithelial tissues)

यह कोशिकाओं की एक से अधिक परतों के द्वारा बनी होती हैं जिसका कार्य मुख्यत: अपने नीचे स्थित अंगो की रक्षा करना होता है। ये निम्न दो प्रकार के होते हैं-

1- स्तरित शल्की उपकला

2- परिवर्ती उपकला

1- स्तरित शल्की उपकला:- यह कोशिकाओं के विभिन्न प्रकार के तीन-चार परतों के द्वारा निर्मित होती हैं इनमें बेसमैन्ट मैम्ब्रेन नहीं पायी जाती हैं। इनमें ऊपर की कोशिकाएँ चपटी होती हैं तथा नीचे की कोशिकाएँ आयताकार होती हैं। यह निम्न दो प्रकार की होती है:-

क- श्रृंगी उपकला:- यह शरीर के शुष्क जगहों पर जैसे- बाल, नाखून, हथेली तथा त्वचा पर पायी जाती है। उपकला की बाहरी परतें शल्की कोशिकाओं की बनी होती हैं जिससे यह त्वचा की श्रृंगी परत कहलाती है। यह वतावरण के बदलते प्रभाव, यंत्रों द्वारा शरीर पर पडने वाले प्रभाव, शरीर पर रगड़ खाना या काफी चोट लगने पर यह अपने नीचे स्थित रचनाओं की रक्षा करती है।

ख- अश्रृंगी उपकला:-इसमें श्रृंगी कोशिकाएँ नहीं पायी जाती हैं यह नमी वाले स्थानों पर पायी जाती हैं जहाँ पर चोट लगने की ज्यादा सम्भावनाएँ पायी जाती हैं जैसे- मुख,गला, ग्रासनी, मूत्रमार्ग, गुदामार्ग, योनि, गर्भाशय ग्रीवा और नेत्र आदि स्थान होते हैं।

परिवर्ती उपकला:- यह नाशपाती के आकार की कोशिकाओं के कई परतों द्वारा निर्मित होती हैं यह मूत्राशय के भीतरी सतह पर पायी जाती हैं मूत्राशय मूत्र से भर जाने के पश्चात यह फैल जाती है और मूत्र निकल जाने पर यह अपनी स्वभाविक अवस्था को पुनः प्राप्त कर लेती है।

संयोजी ऊतकः-

शरीर के विभिन्न रचनाओं को आपस में बांधने या संयोग करने वाले ऊतक को संयोजी ऊतक कहते हैं ऐसे ऊतक शरीर को आधार या ढांचा प्रदान करते हैं तथा उन्हें पोषण एंव संरक्षण प्रदान करते हैं। इनकी कोशिकाएँ एपिथिलियम कोशिकाओं से भिन्न होती हैं अर्थात इनके बीच में काफी स्थान होता है।

सयोजी ऊतक निम्नतः 8 प्रकार की होती हैं:-

1- **अवकाशी ऊतक (Areolar tissue)**:- शरीर में संयोजी उतकों में यह सर्वाधिक मात्रा में पाया जाता है इनकी कोशिकाओं के बीच में अधिक स्थान होने के कारण यह ढीला होता है। यह उन स्थानों पर अधिक पाया जाता है जहाँ पर जोड़ने एवं सहारा देने की क्रिया अधिक होती है जैसे- त्वचा के नीचे, पेशियों के मध्य में, एवं आँतों आदि में देखा जाता हैं

2- **वसीय ऊतक (Adipose tissue)**:- अवकाशी ऊतक के मैट्रिक्स में वसा कोशिकाओं के एकत्रित हो जाने पर वसा गोलिकाएँ बन जाती हैं इन्ही से वसीय ऊतक का निर्माण होता है। यह आँखों के एंव पलकों एवं शिश्न के अतिरिक्त पूरे शरीर में अध ास्त्वकीय ऊतकों में पाया जाता है। यह ऊतक शरीर को होने वाली ज्यादा क्षति से रक्षा करते हैं।

3. **तन्तुमय ऊतक (Fibrous tissue)**:- यह श्वेत कोलेजन के तंतुओं से बनता है। इसीलिए इसका एक नाम श्वेत ऊतक भी है इनकी कोशिकाएँ आपस में थोडी चिपकी होती हैं अतः इनमें मैट्रिक्स की मात्रा कम होती है। तंतुमय ऊतक बहुत कठोर एंव मजबूत होता हैं। अस्थियों का बाहरी आवरण,अस्थियों को बांधने वाली टेडंन, मस्तिष्क तथा वृक्क का बाहरी आवरण भी इन्हीं से निर्मित होता है।

4. **प्रत्यास्थ ऊतक (Elastic tissue)**:- इस प्रकार के संयोजी ऊतक में लचीले तन्तु अधिक मात्रा में पाये जाते हैं। इसी कारण यह फैलने और सिकुड़ने में अधिक स्वतंत्र होता है यह ऐसे अंगों में पाया जाता है जहां आकार परिवर्तन की अधिक आवश्यकता होती है यह रक्त वाहिनियों एवं श्वांस नलिकाओं में अधिक पाया जाता है।

5. **उपस्थि ऊतक (Cortiage tissue)**:- इस प्रकार के संयोजी ऊतक सबसे

अधिक मजबूत ऊतक होते हैं। शरीर में इनसे अधिक मजबूती फिर अस्थियों में ही पायी जाती है। यह साफ सुथरा नीलवर्णीय एक पदार्थ होता है जो अस्थियों एवं सन्धियों के मध्य में मुख्यत: पायी जाती है। इस ऊतक के अन्दर सीधे रक्त की आपूर्ती नहीं होती, यह झिल्ली से ढ़का होता है। इसी झिल्ली के द्वारा इस ऊतक में रक्त की आपूर्ति होती है।

6-लसिका ऊतक (Lymphoid tissue):- इस संयोजी ऊतक में एक विशिष्ठ प्रकार की कोशिकाएँ पायी जाती हैं जिन्हें लिम्फोसाइट कहते हैं। लसिका उतक शरीर में रोग प्रतिरोधक क्षमता को बढाने वाले पदार्थो का निर्माण करती है जिसके द्वारा शरीर रोगों से लडने में सक्षम हो जाता है। ऐसे उतक लसिकापर्व या लिम्फनोड्स में, प्लीहा में, अपेंडिक्स आदि में पाये जाते हैं।

7-श्लेष्मिक ऊतक (Mocoid tissue):- इस प्रकार के ऊतक श्लेष्मा के द्वारा उत्पन्न होते हैं जो शरीर को रोगों से लडने में समर्थ बनाते हैं।

8- रक्त:- यह एक तरल संयोजी ऊतक है। रक्त अपारदर्शक क्षारीय होता है, स्वाद में नमकीन होता है। रक्त का 50 से 60 प्रतिशत भाग तरल होता है जिसे प्लाज्मा कहते हैं। शेष 40 से 50 प्रतिशत भाग रक्त कोशिकाओं का ठोस भाग होता है।

पेशीय ऊतक:-

पेशीय उतक संकुचनशील तंतुओं से मिलर बनता है इस ऊतक के द्वारा शरीर के किसी भाग या अंग में गति होती है। इन ऊतकों में उत्तेजनशीलता, चालकता तथा लचीलापन ये तीन प्रमुख गुण होते हैं। इन उतकों में मैट्रिक्स की मात्रा कम होती है अत: इनकी कोशिकाएँ बहुत करीब होती है।

ये पेशीयाँ निम्न प्रकार की होती हैं:-

1. रेखित या एच्छिक या कंकालीय पेशी

यह पेशी बहुत सी कोशिकाओं से मिलकर बनी होती है और संयोजी संयोजी ऊतक के द्वारा आपस में बंधी होती हैं। इन पेशी को जीवधारी अपनी इच्छानुसार संकुचित कर सकता है या फैला सकता है इन्हीं के कारण शरीर में गतियाँ होती है।

ये पेशी किनारों पर बहुत पतली और बीच में मोटी होती है ऐसी पेशियाँ दो प्रकार से कार्य करती है- 1.आकुंचनी पेशी 2.प्रसारणी पेशी, ये दोनों प्रकार की पेशियाँ दो प्रकार से (आकुंचन तथा प्रसारण का) कार्य करती हैं।

2. अरेखित या अनैच्छिक पेशी

यह पेशी बहुत सूक्ष्म होती है इन्हें खुली आँखो द्वारा नहीं देखा जा सकता इनके ऊपर धारियाँ नहीं होती हैं अत: इन्हें अरेखित पेशियाँ कहते हैं। इन पेशियों को अपने

इच्छा के अनुसार आकुंचन या प्रसारण नहीं किया जा सकता है यह बहुत चिकनी होती है। यह शरीर के आंतरिक अंगों से जुडी होती हैं जैसे- मूत्रमार्ग, रक्तवाहिनियाँ, लसिका वाहिनी, पित्तनली, श्वसनीय पथ का निर्माण इन्हीं पेशियों से मिलकर होता है। इन्हीं के द्वारा भोजन धीरे-धीरे नीचे को जाता है तथा मूत्राशय का बाहर निकलना, ड़िम्ब का गर्भाशय की ओर खिसकते जाना, पुतलियों का अंधेरे में फैलना आदि क्रियाएँ स्वत: ही होती हैं।

3.हृदय पेशी :- हृदय पेशी मात्र हृदय की दीवार में पायी जाती है यह धारीदार होती है परन्तु यह पूर्ण रूप से अनैच्छिक होती है अत: इस पर जीवधारी की इच्छा का नियंत्रण नहीं होता इस पेशी का सबसे महत्वपूर्ण कार्य यह है कि बिना थके जीवन भर कार्य करती है। यह लाल वर्णीय और लम्बाई में रहने वाली पेशी होती है। यह स्वाभाविक रूप से ही फैलती सिकुडती है। अत: यह तन्त्रिका तन्त्र पर निर्भर रहती है।

तंत्रिका ऊतक :-

तंत्रिका तंत्र तंत्रिका ऊतकों से मिलकर बना होता है। तंत्रिका कोशिकाओं को न्यूरान भी कहा जाता है। तंत्रिका कोशिका के निम्न दो भाग होते हैं-

1. कोशिका काय
2. प्रवर्ध

1. कोशिका काय - तंत्रिका कोशिका में एक अनियमित प्रकार का कोशिका काय होता है जिसमें एक केन्द्रक होता है। कोशिका काय के ऊपर दो प्रकार के प्रवर्ध निकले होते हैं इन्हीं के द्वारा तंत्रिका आवेग कोशिका काय तक पहुँचतें हैं या बाहर जाते हैं। मस्तिष्क के बाहरी आवरण में तथा सुषुम्ना के भीतर ग्रे मेटर इन्हीं के द्वारा निर्मित होते हैं।

2. प्रवर्ध- कोशिका काय से दो प्रकार के तन्तु या प्रवर्ध निकलते हैं, जो निम्न हैं-

एक्सोन- प्रत्येक कोशिका काय से एक एक्सोन निकलता है ये तंत्रिका संदेशों या आवेगों को कोशिका काय से दूर ले जाता है।

डेन्ट्राइड़- प्रत्येक कोशिका काय से बहुत सारे डेन्ट्राइड्स निकलते हैं यह एक्सान से बहुत छोटे होते हैं यह आवेगों या संदेशों को ग्रहण करके कोशिका काय तक ले जाते हैं।

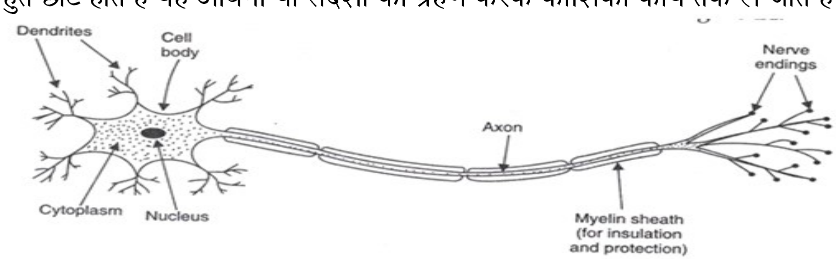

चित्र संख्या -3 (तंत्रिका ऊतक की रचना)

ग्रन्थि ऊतक–

ग्रन्थि एक ऐसी रचना है जो एक तरल पदार्थ का स्राव हमेशा उत्पन्न करती हैं। ऐसी ग्रन्थियाँ शरीर के विभिन्न स्थानों में पायी जाती हैं जैसे– यकृत अग्नाशय, प्लीहा तथा आँत के अन्दर छोटे–छोटे गुच्छों के रूप में भी ग्रन्थियाँ पायी जाती हैं। रचना की द्रष्टि से ये दो प्रकार की होती हैं–

1. सरल ग्रन्थियाँ – इन ग्रंथियों में थोडे बहुत स्राव की इकाईयाँ होती हैं। ऐसी ग्रंथियाँ सीधी तथा शाखाओं में विभाजित होती हैं।

2. यौगिक ग्रन्थियाँ – इन ग्रंथियों में बहुत प्रकार के स्राव की इकाईयाँ होती हैं। जिनका स्राव एक सामान्य नलिका में एकत्रित होता हैं।

कंकालीय ऊतक :–

शरीर के सबसे कठोर ऊतक कंकालीय ऊतक होते हैं। कंकालीय ऊतक के द्वारा ही अस्थि का निर्माण होता है। अस्थियों के कार्य हैं–

1–शरीर को आकार प्रदान करना

2–शरीर के कोमल अंगों की रक्षा करना

3–शरीर को गति प्रदान करना

4–सभी अंगों, लसिका वाहिनीयों, शिरा, धमनियों आदि को अपने स्थान पर रखना

कंकालीय ऊतक निम्न दो प्रकार के होते हैं–

1.सघन ऊतक   2.जालीदार ऊतक

1.सघन ऊतक – सघन ऊतक ठोस होता है और एसे ऊतक चपटी और लम्बी अस्थियों में पाये जाते हैं।

2.जालीदार ऊतक– ऐसे ऊतक मधुमक्खी के छत्ते के समान दिखाई देते हैं। जालीदार ऊतक चपटी अस्थियों के आन्तरिक भाग में, लम्बी अस्थियों के सिरों में स्थित होते हैं।

शरीर की परिभाषा

तत्र शरीर नाम चेतनाधिष्ठानभूतं पंचभूताविकार समुदायात्मकम् समयोगवाही। च. शा. ६/३

शरीर वह है जो चेतना का आश्रय है, पंचभूतविकारों का समुदाय है तथा समयोगवाही है।

चेतनाद्यातुरप्येकः स्मृतः पुरुषः संज्ञकः। च. शा. १/१५

शरीरस्थ २५ तत्वों में २४ तत्व जड़ हैं केवल पुरुष ही चेतन है। चेतन पुरुष के कारण ही शरीर में चेतना है। जब तक शरीर में जीवात्मा है तभी तक प्राणी जीवित है। हम उचित आहार विहार तथा चिकित्सा द्वारा शरीर को आत्मा के निवास के अनुकूल बनाये रखते हैं परन्तु देह के निवास योग्य न रहने पर जीवात्मा इस देह को छोड़कर चला

जाता है और शरीर मृत हो जाता है। अत: स्पष्ट होता है कि पंचभूतात्मक देह में चेतना प्रधान है और शेष सभी गौण हैं। अत: यह शरीर चेतना का ही अधिष्ठान (आश्रय) है, यह स्पष्ट होता है। यह शरीर पंचभूतों के विकारों का ही समूह है।

शरीर समयोगवाही है, अर्थात् शरीरस्थ धातु आदि के समभाव से संयुक्त होने से ही इस शरीर का वहन होता है। शरीर द्रव्यों का विषमयोग रोग का कारण है। इन्द्रिय, विषय, कर्म, और काल के समयोग द्वारा ही शरीर स्वस्थ रहता है।

मनोनिरूपण

पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, आत्मा, मन, काल और दिशा ये नौ द्रव्य हैं। इस प्रकार मन को एक द्रव्य माना गया है। मन २४ तत्वों वाले पुरुष का प्रधान तत्व है। इसे मनन करने के कारण मन और चिंतन करने के कारण चित्त कहा गया है। मन के द्वारा ही मन से चिंतन किया गया है। मन से रहित पुरुष की कल्पना करना भी संभव नहीं है। यह मन ही समस्त कार्यों को करने वाला है मनोयोग पूर्वक किये गये कार्य ही सफल होते हैं। यह मन ही आत्मा में चैतन्य का प्रकाश करता है। आत्मा चैतन्य परन्तु क्रिया शून्य है और मन अचैतन्य परन्तु क्रियावान् है। परन्तु चैतन्य के कारण आत्मा को ही कर्त्ता कहा जाता है, मन कर्त्ता होने पर भी कर्त्ता नहीं कहलाता।

योगवाशिष्ट में मन का व्यापक चिंतन किया गया है। इसे आर्षमनोविज्ञान भी कहा गया है। मन की शक्तियों पर नियंत्रण ही योग है। जिसके द्वारा मनुष्य अष्ट सिद्धियों का स्वामी बनता है। मनोयोग से ही बन्धन कटता है और मोक्ष प्राप्त होता है। मन के द्वारा ही आत्मसाक्षात्कार होता है। मनोयोगपूर्वक किये गये कार्य ही सफलता देते हैं। इहलोक और परलोक के साधन में मन का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

मन की निरुक्ति (परिभाषा) -

'मन - ज्ञाने' धातु से मन शब्द बना है।

'मन बोधे' धातु से भी मन शब्द की उत्पत्ति हुई है।

'मन्यते बुध्यतेऽनेनेति मनः।' जो हमें विषयों का बोध कराता है वही मन है।

'मन्यते ज्ञायतेऽनेनेति मन:।' मन वह है जो ज्ञान कराता है।

इससे यह स्पष्ट होता है कि मन विषयों के ज्ञान का कारण है। मन का संयोग ज्ञान का कारण है तथा मन संयुक्त न होना अज्ञान का कारण है।

मन का स्थान -

(१). मन का स्थान हृदय -

सत्वादिधाम हृदयम् स्तनोरः कोष्ठमध्यगम्॥

मन आदि का स्थान हृदय है जो कोष्ठ में स्तन और उर के मध्य में स्थित है।

हृदयमिति कृतवीर्योबुद्धेमनसश्च स्थानत्वात्॥

कृतवीर्य का कथन है कि गर्भ में हृदय ही पहले बना जो कि मन व बुद्धि का स्थान है।

हृत्प्रतिष्ठम् यदजिरम् जविष्ठम् तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु॥

जो हृदय में रहता है, कभी भी वृद्ध नहीं होता और अत्यंत वेगवान है, ऐसा मेरा मन अच्छे संकल्पों वाला हो।

(२) मन का स्थान मस्तिष्क -

प्राणाः प्राणभृतां यत्राश्रिताः सर्वेन्द्रियाणि च।
यदुत्तमाङ्गमंगानाम् शिरस्तदभिधीयते॥ (च. सू. ११७/११)

जिस अंग में जीवधारियों का प्राण और सभी इन्द्रियाँ प्रतिष्ठित है, उस उत्तम अंग को सिर कहते हैं। मन भी एक इन्द्रिय है अत: मन का स्थान सिर है।

शिरस्ताल्वन्तर्गतं सर्वेन्द्रियपरम् मनः। (भे. सं. चि. ८/४)

सम्पूर्ण इन्द्रियों में श्रेष्ठ मन, शिर व तालु के मध्य स्थित हैं।

ऊर्ध्वम् प्रकुपिता दोषाः शिरस्ताल्वान्तरे स्थिताः।
मनः सा दूष्यन्तयाशु ततश्चितम् विपद्यते॥ (भे. सं. चि. ८/१०)

ऊर्ध्व भाग में प्रकुपित दोष जब शिर व तालु में स्थित हो जाते हैं तो मन को दूषित कर देते हैं। इससे चित्त भी दोषयुक्त हो जाते हैं। इससे स्पष्ट होता है कि शिर में स्थित मन ही उन्माद का कारण है।

शीर्षम् चत्वारः कूपा इमौ अह द्वौ इमौ द्वौ। (शतपथ ब्राह्मण ३/५/४/१)

सिर में चार कूप हैं दो यह और दो यह।

आधुनिक मत से हृदय में जो खाली स्थान है उसमें चार वैन्ट्रिकिल्स (Ventricles) है दो पार्श्व निलय (Latriral Ventricles) तृतीय निलय (Lird Ventricles) तथा चतुर्थ निलय (Forth Ventricles) इन निलयों में एक दुग्ध के समान द्रव भरा रहता है सायण इस सन्दर्भ में कहता है। -

उरवा मध्ये पयः पूरिते पुरुषमुपदध्यात्॥ (सायण)

पय से भरी हुई उरवा के मध्य पुरुष का उपधान करते है। पुरुष के साथ मन भी रहता है। अत: उरवा के मध्य ही यह मन भी स्थित होता है।

मन के विषय तथा कर्मः-

चिन्त्यम् विचार्यमूह्य च ध्येसम् संकल्पमेव च।
यत्किञ्चिंमनसो ज्ञेयम् तत्सर्वम् ह्यर्थसंज्ञमम्॥ (च. शा. १/१९)

चिन्त्य, विचार्य, उह्य, ध्येय और संकल्प तथा इसके अतिरिक्त जो भी मन से ज्ञेय होता है, वे सभी मन के विषय या अर्थ हैं।

जो कुछ सोचता है, वह चिन्त्य है। गुण व दोष द्वारा जो विचारता है,वो विचार्य है। युक्ति द्वारा किया गया तर्क उह्य है। जिसका ध्यान किया जाये, वह ध्येय है। कर्त्तव्याकर्त्तव्य की कल्पना द्वारा किया गया निश्चय ही संकल्प है।

इन्द्रियाभिग्रहः कर्म मनसस्त्वस्य निग्रहः।
उह्यो विचारश्च ततः परम् बुद्धि प्रवर्तते॥ (च. शा. १/२०)

इन्द्रिय अभिग्रह अर्थात् उनको अपने विषयों में प्रेरित करना तथा मन का स्वयं को अहित विषयों में जाने से रोकना अर्थात् स्वयं अपना नियंत्रण करना उहा अर्थात् शास्त्रों द्वारा प्रतिपादित अर्थ का युक्ति द्वारा तर्क करके स्थापित करना, विचारना, यह मन के कार्य हैं।

किसी विषय को ग्रहण करने के लिए आत्मा द्वारा प्रेरित मन उस विषय की ग्राहक इन्द्रियों से सम्पर्क बनाता है और उसे प्रेरित करता है। तथा जिस प्रकार राजा प्रजा का नियन्त्रण करता है, उसी प्रकार मन भी इन्द्रियों को अनिष्ठ विषयों में जाने से रोकता है, और स्वयं पर भी नियन्त्रण रखता है।

स्फुरति वल्गति गच्छति यापते मज्जति संहरति स्वयं।
अपरतामुपयात्यपि केवलं चंचलशक्तितया मनः॥ (योग वाशिष्ठ १/७१)

इस मन में चंचलता की आश्चर्यजनक शक्ति है। यह मन ही चलायमान होता है। इसमें नित्य नये विचारों का स्फुरण होता है। यह नियंत्रण करता है। यही विषयों की याचना करता है। यही इधर से उधर भ्रमण करता है। यही विषयों में डूब जाता है। स्वयं ही इससे निकल भी आता है।

योग द्वारा मन का निग्रह –

(१) प्राणायाम द्वारा मन का नियमन –

नियन्ता प्रणेता च मनसः। (च. सू. १२/७)

वायु मन का नियंत्रण व प्रेरणा करने वाला है।

इन्द्रियाणां मनोनाथः मनोनाथस्तु मारुतः। (हठ. प्र. ४/२९)

इन्द्रियों का स्वामी मन है, तथा मन का स्वामी वायु है।

यहाँ पर वायु से प्राणवायु अर्थ ग्रहण करना चाहिए। इसका नियमन प्राणायाम से किया जाता है। प्राणायाम श्वास प्रश्वास की गति के विच्छेद का नाम है।

(२) मन नियन्त्रण अभ्यास व वैराग्य द्वारा –

असंशयम् महाबाहो मनो दुर्निग्रहम् चलम्।
अभ्यासेन तु कौन्तेय वैरागयेण च गृह्यते॥ (गीता ६/३५)

भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं कि हे महाबाहो! इस मन का निग्रह करना निश्चित रूप से बड़ा कठिन है क्योंकि यह चलायमान है। इस मन का नियंत्रण अभ्यास और वैराग्य से करना चाहिए।

(३) मन का नियंत्रण ध्यान द्वारा – योग वाशिष्ठ में कहा गया है कि मन को शान्त करने का सबसे श्रेष्ठ उपाय ध्यान है। मन ध्यान द्वारा अपनी मनन शक्ति को खो देता है। मनन शक्ति के नष्ट होने से मन शान्त हो जाता है।

अस्थि तन्त्र

कंकाल अस्थि का बना हुआ ढाँचा होता है जो कुछ कोमल अंगों को सहारा देता है तथा उनकी रक्षा करता है, इनमें कपाल (स्कल) तथा श्रोणि (पेल्विस) के भीतर स्थित अंग मुख्य हैं। कंकाल का अन्य मुख्य कार्य शरीर की गति में योग देना है– हड्डियाँ पेशियों के जुडने या संलगित होने के लिए आधार प्रदान करती है तथा गति के समय उत्तोलक या लीवर का कार्य करती हैं। कंकाल की रचना में हड्डियों के अतिरिक्त कुछ स्थानों पर कार्टिलेज या उपस्थि का भी योग होता है।

अस्थि के भेद (kind of bones)

अस्थियों के समागम स्थल को सन्धि कहा जाता है। यह सन्धियाँ स्नायु (Ligaments) से बंधी होती है। सन्धियाँ दो प्रकार की है– चल तथा अचल। शाखाओं, हनु, कटि और ग्रीवा में चल व अन्यत्र स्थिर सन्धियाँ होती है।

आयुर्वेद के आकार के आधार पर अस्थियों के निम्न भेद किये गये हैं –

१– कपाल अस्थियाँ – यह चपटी होती है, इन्हें फ्लैट बोन्स (Flat bone) कहा जा सकता है।

२– नलक (Long bones) – यह नली के आकार के होती है।

३– रुचक (Teeth) – दांतों को रुचक कहा जाता है।

४– तरुणास्थि (Cirtilages) –

५– वलय (Circular bone) – इनमें पर्शुकाओं की गणना होती है।

इस प्रकार आयुर्वेद में दांतों व तरुणास्थियों को भी अस्थियों में गिना गया है इसलिए चरक ने ३६० अस्थियाँ कही है। जबकि आधुनिक मत से २०६ अस्थियाँ है।

आधुनिक मत से अस्थियाँ चार प्रकार की होती है।

1– फ्लैट बोन्स (Flat bone) – यह चपटी अस्थियाँ होती है। जैसे शिर की अस्थियाँ।

२– लोंग बोन्स (Long bones) – यह लम्बे आकार वाली अस्थियाँ होती है।

३– शार्ट बोन्स (Short bones) – इनका आकार छोटा होता है, जैसे कारपस (Carpus) तथा टारसस (Tarsus) अस्थियाँ।

४– इरैगुलर बोन्स (Irregular bones) – यह अनियमित आकार वाली होती हैं जैसे कशेरुकायें।

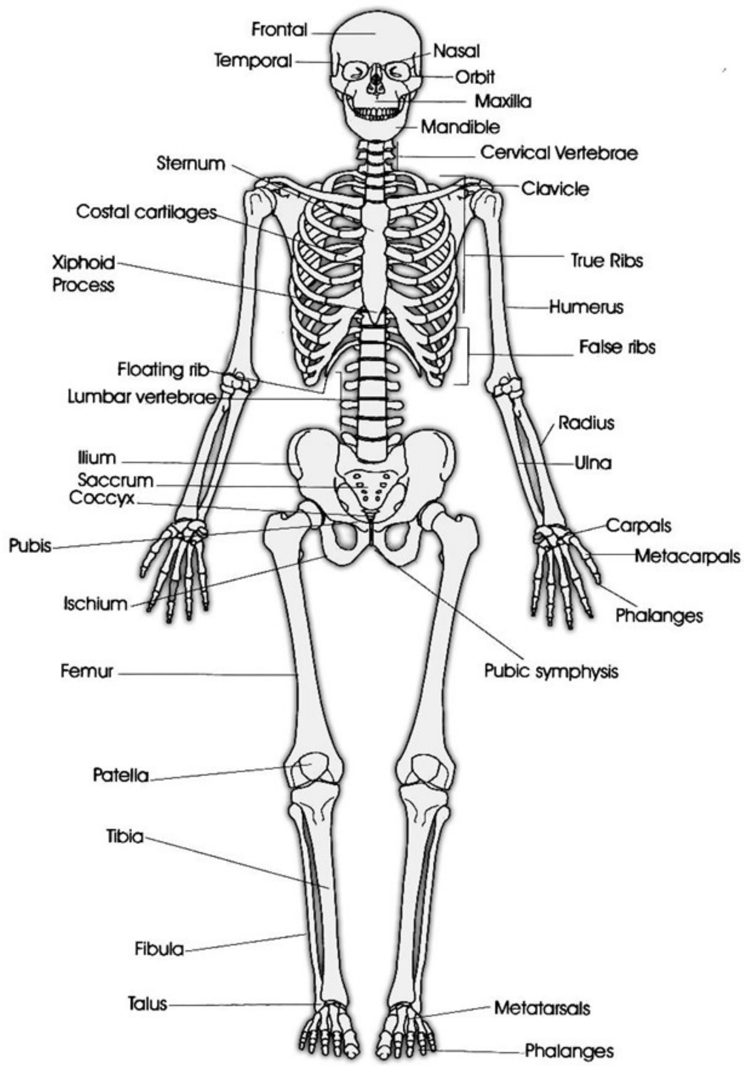
Frontal
Temporal
Nasal
Orbit
Maxilla
Mandible
Cervical Vertebrae
Sternum
Clavicle
Costal cartilages
Xiphoid
Process
True Ribs
Humerus
False ribs
Floating rib
Lumbar vertebrae
Radius
Ilium
Ulna
Saccrum
Coccyx
Carpals
Pubis
Metacarpals
Ischium
Phalanges
Femur
Pubic symphysis
Patella
Tibia
Fibula
Talus
Metatarsals
Phalanges

चित्र : अस्थि पंजर

अस्थियों की रचना

अस्थि कार्बनिक तथा अकार्बनिक पदार्थों से बनी होती है। यह दोनों आपस में दृढ़ता बंधे होते हैं कि सामान्य उपायों द्वारा पृथक नहीं किया जा सकता है। अस्थि के ऊपर अस्थ्यावरण (Periosteum) होता है। इसे आयुर्वेद में अस्थिधराकला कहा जाता है। अस्थि का बाहरी भाग घना तथा कठोर होता है इसे कम्पैक्ट (Compect) या डैंस पार्ट (Dense part) कहा जाता है। अन्दर की ओर का भाग स्पन्ज का आकार का होता है इसे स्पन्जी (Spongy) या कैन्सिलस भाग (Cancellous part) कहा जाता है। इसमें लाल रक्त मज्जा (Rad bone marrow) भरी होती है। दीर्घ अस्थियों (Long bones) तथा फीमर (Femur) आदि के शैफ्ट (Shaft) में नलिकाकार खाली स्थान पाया जाता है जिसे मिडूल्लरी कैविटी (Medullary cavty) कहा जाता है। इसमें पीत मज्जा भरी होती है। चपटी अस्थियों के बाहर की और मजबूत काम्पैक्ट भाग होता है और अन्दर की ओर पतला स्पन्जी भाग होता है। छोटी तथा अनियमित (Irregular) अस्थियों में बाहर की ओर पतला कम्पैक्ट भाग होता है व अन्दर का सारा भाग स्पन्जी भाग से भरा होता है।

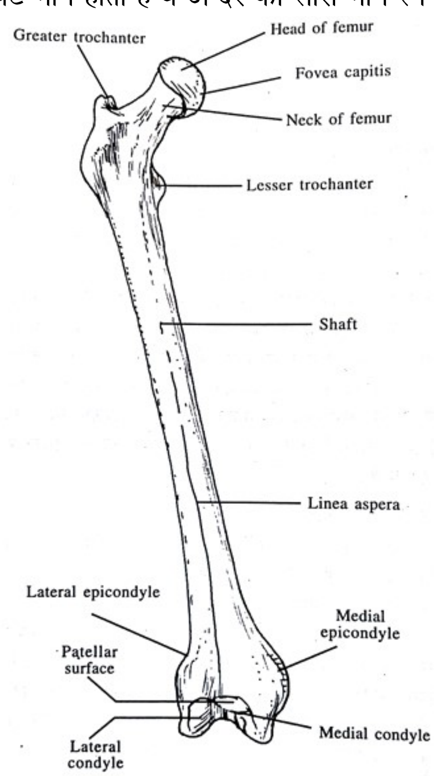

चित्र 7.34 फीमर अस्थि (Anterior view of the femur)

<u>**चित्र संख्या– 4 (अस्थि की रचना)**</u>

अस्थियों के कार्य (Function of bone)

१. यह कंकाल का निर्माण करती है।

२. यह पेशियों, कण्डकाओं, स्नायु आदि रचनाओं को आधार देती है।

३. इनके कारण ही पेशियों के संकोच द्वारा विभिन्न अंग गतिशील होते है।

४. यह शरीर को सुदृढ़ता व शक्ति प्रदान करती है।

५. यह परस्पर संयुक्त होकर बक्से के समान रचनाएं बनाती है जिनमें शरीर के महत्वपूर्ण अंग सुरक्षित रहते हैं। यथा – मस्तिष्क, हृदय, फेफड़े आदि।

६. अस्थियों में स्थित मज्जा में रक्त कणों का निर्माण होता है।

७. आयुर्वेद में अस्थियों को देहधारक तथा मज्जा को पोषक कहा गया है।

८. अस्थियाँ कैल्शियम का संग्रहालय (Dipot) है। आवश्यकता पड़ने पर कैल्शियम को अस्थि से ले लिया जाता है।

तरुणास्थि का स्थान (Cartilage)

कार्टिलेज शरीर के कई भागों में पायी जाती है जैसे जोड़ों, छाती, गले, नाक, कान आदि में। शक्ति व कठोरता के साथ– साथ स्थितिस्थापकता भी होती है। इनका आवरण पेरिकांड्रियम (Prichondrium) कहलाता है। इससे कुछ बारीक सूक्ष्म नलिकायें भीतर की ओर जाती है जिसमें इसको पोषण देने वाली धम व शिरा स्थित होती है। इनके चारों ओर तन्तुमय धातु (Fibrous tissue) होता है।

अवस्था के अनुसार यह दो प्रकार की है।

१. अस्थायी कार्टिलेज (Temporary cartilage) – यह कार्टिलेज बाद में अस्थियों में परिवर्तित हो जाती है।

२. स्थायी कार्टिलेज (Parmament cartilage) – ये कार्टिलेज हमेशा तरुणस्थि के रूप में रहती है।

रचना के आधार तीन प्रकार की होती है।

1. हालीयन कार्टिलेज (Hyaline cartilage) – यह हल्के नीले रंग की होती है। इसके चारों ओर तन्तुमय धातु का आवरण पेरीकांड्रियम (Perichondrium) होता है। इसमें नाडियाँ नहीं होती। इसके मैट्रिक्स (Matrig) में न्यष्टि युक्त कोष होते हैं। मैट्रिक्स पारदर्शी तथा दानेदार होता है वक्ष की तरुणास्थियाँ तथा आर्टिकुलर कार्टिलेज हायालीन कार्टिलेज है।

2. श्वेत तन्तु तरूणास्थि (white fibrocartilage) – इसमें घना श्वेत वर्ण का तन्तुमय धातु होता है, इसके मध्य मे ंन्यष्टियुक्त अण्डाकृति कार्टिलेज पाये जाते हैं। यह अस्थियों के संयोजक सिरों पर पायी जाती हैं।

3. पीत फाइब्रोइलास्टिक कार्टिलेज (yellow fibro-elastic cartilage) – इसके आधार धातु में येलो इलास्टिक फाइवर होते हैं। इनके मध्य में कार्टिलेज कोष होते हैं। यह कान, लेरिंग्स आदि में पाये जाते हैं।

सन्धि स्थल (Joints or Articulations)

शरीर के कंकाल की रचना छोटी-छोटी, लम्बी-पतली, चपटी-गोल आदि अनेकों प्रकार की अस्थियों से मिलकर होती है तथा पेशियाँ इन्हें शक्ति प्रदान करती हैं, परन्तु गतिशील सन्धियों से शरीर को गति करने की क्षमता प्राप्त होती है। शरीर में जहाँ कहीं दो अस्थियाँ आपस में मिलती हैं वहाँ जोड़ या सन्धि बनती है।

सन्धियों का वर्गीकरण रचना तथा गति के आधार पर किया गया है। रचना के आधार पर सन्धियों को तीन वर्गों में विभाजित किया गया है; जैसे-

1. तन्तुमय सन्धियाँ
2. उपास्थिमय सन्धियाँ
3. साइनोवियल सन्धियाँ

गति के आधार पर भी सन्धियों को तीन भागों में विभाजित किया गया है। जिस स्थान पर अस्थियाँ आपस में सन्धि बनाती हैं वहाँ पर थोडी बहुत गति कर सकती हैं, परन्तु कुछ सन्धियाँ ऐसी भी हैं, जिनमें गति करने की क्षमता बिल्कुल भी नहीं रहती है। कुछ सन्धियों में स्वच्छन्दतापूर्वक गति करने की क्षमता रहती है। कुछ सन्धियों में केवल हल्की गति हो सकती है। जैसे-

1. अचल सन्धियाँ
2. अल्पचल सन्धियाँ
3. चल सन्धियाँ

साधारण तौर पर देखा जाए तो तन्तुमय सन्धियाँ सामान्यत: अचल, उपास्थिमय सन्धियाँ सामान्यत: अल्पचल सन्धियाँ, तथा साइनोवियल सन्धियाँ सामान्यत: चल सन्धियाँ होती हैं। किन्तु सभी सन्धियाँ इस वर्गीकरण के अन्तर्गत विभाजित नहीं की जा सकती हैं। क्योंकि कुछ सन्धियाँ ऐसी भी हैं, जो थोड़ी सी गातिशील होती हैं जैसे टिबिया और फिब्यूला का निचला जोड़ा। कुछ उपास्थिमय सन्धियाँ होती हैं, जो विरले ही गतिशील है, जैसे सिम्फाइसिस प्यूबिस।

तन्तुमय सन्धियाँ (Fibrous joints)

तन्तुमय सन्धियों में सन्धि गुहा का अभाव रहता है, तथा तन्तुमय संयोजी ऊतक अस्थियों को आपस में सन्धिबद्ध करते हैं। चँकि ये आपस में कसकर जुड़ जाते हैं, इसीलिए वयस्कों में तन्तुमय सन्धियाँ सामान्यत: अचल होती हैं। सामान्यत: तन्तुमय संधियाँ निम्न तीन प्रकार की होती हैं।

1. सन्धि रेखाएँ या स्यूचर्स (Sutures)
2. सिण्डेस्मोसिस (Syndesmoses)
3. गोम्फोसिस (Gomphoses)

स्यूचर्स (Sutures)-

कपाल की अस्थियों के बीच पाई जाने वाली सन्धि रेखाएँ तन्तुमय या अचल सन्धियाँ होती हैं। वयस्कों में ये अस्थियाँ जुड़ने के बाद गति नहीं करती हैं और पूर्ण रूप से स्थिर हो जाती हैं। जुड़ने वाली अस्थियों के किनारों पर आरी के समान दाँत रहते हैं, जो एक-दूसरी अस्थि के दाँतों में फिट बैठकर स्यूचर सन्धि बनाते हैं। शिशु में जन्म के समय अस्थि और अस्थि के बीच तन्तुमय ऊतक की स्पष्ट रेखा रहती है, जो अस्थियों के किनारों को एक दूसरे के ऊपर मामूली खिसकने देती हैं, जिसे श्रोणिय मार्ग से निकलते समय शिशु के सिर का शीर्षानुकूलन होने में आसानी होती है। भ्रूणों एवं बच्चों में कपालीय स्यूचर्स के लचीलेपन के कारण ही मस्तिष्क वृद्धि सम्भव होती है, वयस्कों में, अस्थियों के बीच स्थित संयोजी ऊतक के तन्तु अस्थि में परिवर्तित हो जाते हैं तथा अस्थियाँ स्थायी रूप से जुड़ जाती हैं। इस तरह की सन्धि को अस्थि संयोजन या साइनोस्टोसिस कहा जाता है।

सिण्डेस्मोसिस (Syndesmoses)-

यह ऐसी अचल सन्धि होती है, जिसमें अस्थियाँ पास-पास होती हैं, किन्तु एक-दूसरे को स्पर्श नहीं करती तथा कॉलेजन तन्तुओं अथवा इन्टरोसियस लिगामेन्ट्स द्वारा जुड़ी रहती है। ऐसी सन्धि की गति अस्थियों के बीच की दूरी तथा तन्तुमय यंयोजी ऊतक के लचीलेपन पर निर्भर करती है। ऐसी अचल सन्धि इन्फीरियर टिबियोफिब्यूलर सन्धि में बनती है, जहाँ कि सीमित गति होती है, जिससे इस जोड़ को ताकत मिलती है। जबकि रेडियस एवं अल्ना के बीच स्थित इन्टरोसियस लिगामेन्ट्स द्वारा अत्यधिक गति होती है, जिसमे अग्रबाहु की अवतानन (प्रानेशन) एवं उत्तानन (सुपिनेशन) गतियाँ भी होती हैं।

गोम्फोसिस (Gomphoses)-

एक प्रकार की तन्तुमय सन्धि है, जो एक कील या खूँटी और गर्त्त की बनी होती है। इस प्रकार की सन्धि दन्तमूल के दन्त कोटर में उसकी अस्थिल सॉकेट में फिट होने से बनती है।

उपस्थिमय सन्धियाँ

उपस्थिमय सन्धियों में अस्थियाँ हाएलिन कार्टिलेज की प्लेट अथवा फाइब्रोकार्टिलेज की गद्दी से जुड़ी रहती हैं। ऐसी सन्धियों में सन्धि गुहा का अभाव

रहता है तथा बहुत मामूली–सी गति होती है अथवा बिल्कुल गति नहीं होती है। वर्टिब्री के कार्यो, मेन्यूब्रियम के बीच और स्टर्नम के काय में उपास्थिमय सन्धि पायी जाती है।

साइनोवियल सन्धियाँ

शरीर की अधिकाशं स्थायी सन्धियाँ साइनोवियल होती हैं। इस प्रकार की सन्धियों में अस्थियों के सिरे एक पतली, चिकनी सन्धि बनाने वाली उपास्थि (आर्टिक्यूलर हाएलिन कार्टिलेज) से ढंके रहते हैं। इसमें एक सन्धि गुहा होती है, जिसमें एक साफ, गाढा, लसलसा तैलीय द्रव (साइनोवियल फ्ल्यूड) भरा होता है, जो सन्धि को चिकना बनाये रखता है और रक्तवाहिका विहीन आर्टिक्यूलर कार्टिलेज को पोषण प्रदान करता है। सन्धि एक तन्तुमय अर्टिक्यूलर कैप्सूल से घिरी रहती है, जिसमें साइनोवियल कला या मेम्ब्रेन का अस्तर होता है। यह अस्तर सन्धि के सिरों, उपास्थि और डिस्क पर नहीं होता। तन्तुमय कैप्सूल कोलेजन तन्तुओं की मोटी परत, जिसे लिगामेन्ट कहते हैं, से जुडा रहता है। इस तरह की सन्धियों के बीच अन्य तरह की सन्धियों की अपेक्षा अधिक स्वच्छन्दता पूर्वक गतियाँ होती हैं।

साइनोवियल सन्धियों को अपने में होने वाली गतियों की सीमा अथवा अस्थियों के आर्टिकुलेटिंग सतहों के आकार के अनुसार विभिन्न वर्गों में विभाजित की जा सकती हैं–

कोर या हिन्ज सन्धियाँ (Hinge joints)
घुमावदार सन्धियाँ (pivot joints)
कॉण्डायलॉइड सन्धियाँ (Condyloid joints)
फिसलने वाली या ग्लाइडिंग सन्धियाँ (Gliding joints)
बॉल एवं सॉकेट सन्धियाँ (Ball and Socket joints)

घुटने की सन्धि या जोड़

घुटने की सन्धि शरीर की सबसे लम्बी व सबसे जटिल सन्धि है। यह हिन्ज संरचना की एक साइनोवियल सन्धि है।

वास्तव में घुटने की सन्धि तीन साइनोवियल सन्धियों से मिलकर बनी होती है, एक सन्धि फीमर एवं टिबिया के मीडियल कॉण्डाइलों के बीच होती है, दूसरी सन्धि इन अस्थियों के लेटरल कॉण्डाइलों के बीच होती है तथा तीसरी सन्धि पटेला एवं फीमर के बीच होती है। आर्टिकुलर कैप्सूल का एन्टीरियर भाग क्वाड्रीसेप्स फीमोरिस पेशी के टेण्डन का बना होता है, जो पटेला को भी सहारा देती है। अर्टिकुलर कैप्सूल को बाह्मय लिगामेन्टों, टिबियल या मीडियल कोलेटरल लिगामेन्ट एवं फिब्युलर या लेटरल कोलेटरल लिगामेन्ट जो फीमर के पार्श्वों तक फैले रहते हैं, से शक्ति प्राप्त होती है।

सन्धि के भीतर मध्य में एक दूसरे को क्रास करते हुए मजबूत डोरी के समान एन्टीरियर एवं पोस्टीरियर दो क्रुशिएट लिगामेन्ट्स होते हैं, जो फीमर के इन्टरकॉण्डाइलर

नॉच से लेकर टिबिया के इन्टरकॉण्डाइलर उत्सेध तक फैले रहते हैं। ये सन्धि को स्थिर रखने में सहायता करते हैं तथा घुटने की गति को नियन्त्रित रखते हैं।

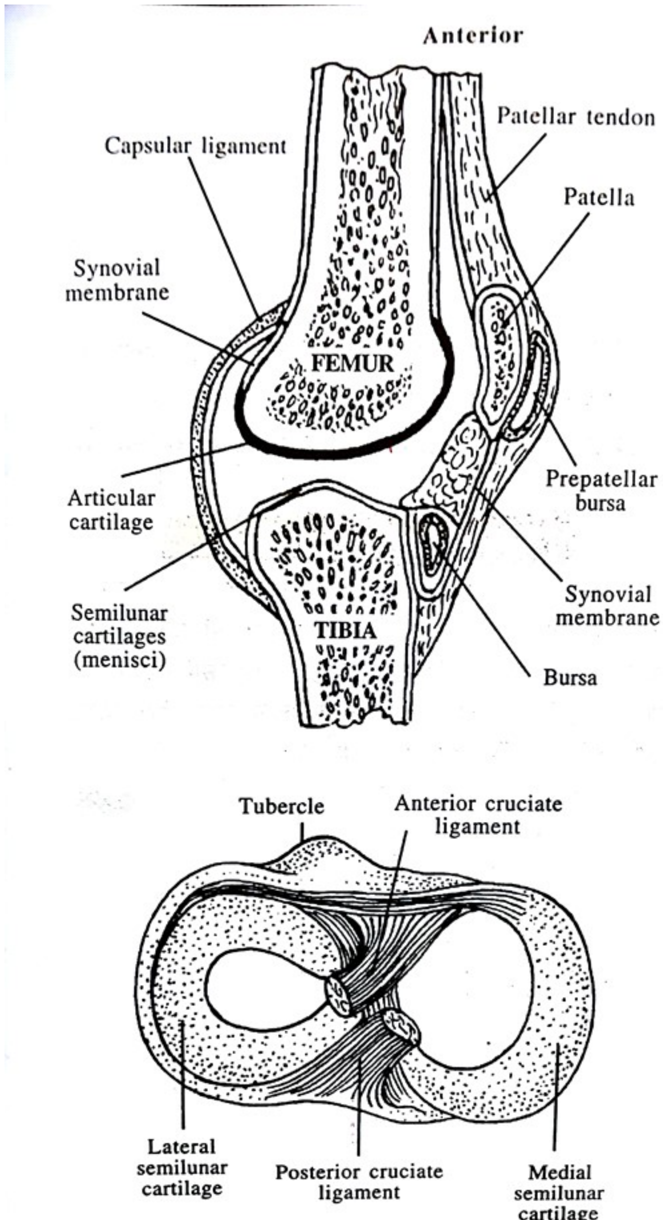

चित्र 8.10 घुटने की सन्धि-पार्श्वकाट
(Section viewed from the side)

चित्र संख्या -5 (घुटने की सन्धि स्थल की रचना)

सन्धि के भीतर टिबिया के आर्टिकुलर कॉण्डाइलों के शिखर पर श्वेत तन्तुमय उपास्थि की दो अर्द्धचन्द्राकार गद्दियाँ रहती हैं, जिन्हें मेनिस्काइ कहा जाता है। ये फनाकार होती है और इनका बाहरी किनारा अधिक मोटा होता है। ये अस्थियों के लेटरल विस्थापन को रोककर सन्धि के स्थिर होने में सहायता करती हैं और ये टिबिया की आर्टिकुलर सतहों पर फीमर की कॉण्डाइलर सतहों के फिट होने के लिए उन्हें और गहरा बना देती हैं।

सन्धि में कई बर्सा होते हैं, जो गद्दियों का कार्य करते हैं, वे हैं, पटेला के ऊपर का सुप्रापटेलर बर्सा, जो क्वाड्रीसेप्स फीमोरिस पेशी तथा फीमर के बीच स्थिर होता है, दूसरा प्रीपटेलर बर्सा जो त्वचा एवं पटेला के बीच स्थिर होता है तथा तीसरा इन्फ्रपटेलर बर्सा जो त्वचा एवं टिबियल ट्यूबरोसिटी के बीच स्थित रहता है। इनसे अस्थि एवं लिगामेन्ट या टेण्डन के बीच तथा त्वचा एवं पटेला के बीच में घर्षण कम होता है।

घुटने की सन्धि में आकुंचन, प्रसारण और मामूली–सी घूर्णन की गति होना सम्भव होती है।

अस्थियों पर योग का प्रभाव

1. हलासन, पश्चिमतानासन, धनुरासन, त्रिकोणासन, चक्रसन, शीर्षपादासन, पादहस्तासन, शशांकासन, वृश्चिकासन, अर्धमत्स्येन्द्रासन रीढ़ की हड्डी को स्वस्थ व शक्तिशाली बनाते हैं।

2. भुजंगासन के नियमित अभ्यास से मन्याशूल (Cervical spondilytis) में बहुत लाभ होता है।

3. पद्मासन मेरूदंड की अस्थियों को सबल बनाता है।

4. धनुरासन छाती की पसलियों को मजबूत बनाता है।

5. हलासन मेरूदंड को लचीला बनाता है।

6. मत्स्येन्द्रासन के नियमित अभ्यास से अस्थि संधियाँ लचीली होती है।

7. गरूड़ासन के प्रयोग रीढ़ की हड्डी में लचक आती है और कमर पतली होती है।

8. उत्कटासन तथा संकटासन से पीठ की अस्थियाँ दृढ़ होती हैं।

पेशीतंत्र

(Muscular System)

शरीर की सभी मांसपेशियाँ मांसपेशी संस्थान का अंग हैं। शरीर की मूल ६ ाातुएँ चार हैं– आस्तरण धातु (Epithelia Tissue), योजक धातु (Connective Tissue), मांस धातु (Musscular Tissue) तथा नाड़ी धातु (Nervous Tissue)। आकुंचन कोष मात्र का गुण है। परन्तु मांस धातु में यह कर्म विशेष रूप से होता है। मांस धातु मांसपेशियों में विभक्त होती है।

मांसधातु की परिभाषा व उत्पत्ति –

मांस शब्द की उत्पत्ति 'माङ्गमाने' धातु से हुई है जिसका अभिप्राय है मापन योग्य होना। यह धातु मापन के योग्य है अत: इसे मांस कहा जाता है।

आयुर्वेद के मत से रस से रक्त तथा रक्त से मांस उत्पन्न होता है। चरक का मत है कि वायु, जल, तेज व ऊष्मा से युक्त होने पर रक्त स्थिरता को प्राप्त होकर मांस बन जाता है। डल्हण का मत है कि मांस धातु का संघात ही परस्पर विभक्त होकर पेशी (Muscle) कहलाता है।

पेशी का परिचय –

पेशियों के दो सिरे होते हैं। यह दोनों सिरे स्नायु (Ligaments) तथा कण्डराओं (Tendons) द्वारा दृढता से अस्थियों से बंधे होते हैं। मांसपेशी का पहला सिरा अस्थि के जिस भाग से बंधा होता है उसे प्रभव (Origin) कहते हैं तथा दूसरा सिरा जो दूसरी अस्थि पर जाकर लगता है उसे निवेश (Insertion) कहते है। इस प्रकार मांसपेशी अस्थि के एक भाग से निकलती है तथा दूसरी अस्थि पर जाकर लग जाती है। क्रियाशीलता के समय मांसपेशी का प्रभव स्थान (Origin part) स्थिर रहता है, जिसके कारण मांसपेशी के संकोच से निवेश भाग (Insertion part) गतिशील होता है। मांस पेशी ही शरीर की गति का कारण है।

पेशी के भेद

पेशियाँ तीन प्रकार की होती है–

1. धारीदार या ऐच्छिक मांसपेशी (Striped or Voluntary muscle)- इन मांसपेशियों को कंकाल पेशी (Skeletal muscle) भी कहा जाता है क्योंकि यह कंकाल पर स्थिर होती हैं। इनके मांससूत्रों के संकोचशील पदार्थ (Contractile

substance) में गहरी तथा हल्की धारियाँ पायी जाती हैं जिसके कारण इन्हें धारीदार मांसपेशी कहा जाता है। यह मांसपेशीयाँ हमारी इच्छा के अधीन होती हैं। अत: इन्हें इच्छाधीन पेशी कहा जाता है। मांससूत्र (Muscle fiber) लगभग 2.5 से.मी. लम्बे होते हैं। इनका आकार सिलिन्डर के समान होता है तथा इनके सिरे गोल होते हैं। इनमें से कुछ कण्डरा समूह (Tendon bundle) के रूप में लम्बे हो जाते हैं तथा अस्थियों से जुड़े होते हैं। हरेक सूत्र एक आवरण में लिपटा होता है जिसे सारकोलैमा (Sarco-lemma) कहा जाता है। इसके भीतर एक मृदु पदार्थ भरा होता है जिसे संकोचशील पदार्थ (Contractile substance) कहते हैं। इस संकोचशील पदार्थ के भीतर हल्की तथा गहरी धारियाँ होती है जिसके कारण इन्हें धारीदार मांसपेशी कहते हैं। मांससूत्रों में अण्ड़ाकार न्यष्टि (Nuclei) होती है। यह सारकोलेमा के ठीक नीचे होती है।

2. धारीरहित या अनैच्छिक पेशियाँ (Unstriped or Involuantry muscle)

यह मांसपेशियाँ शरीर के अनेक अंगों की क्रियाशीलता के लिये आवश्यक हैं। यह छोटे-छोटे मांस सूत्रों (Muscle fiber) की बनी होती हैं। यह मांस सूत्र लम्बे तथा सूच्याकार (Fusioform) होते हैं। इनकी लम्बाई 1/600 इंच से अधिक नहीं होती। हरेक सूत्र में एक अण्डाकृति न्यष्टि होती है। इसके चारों ओर पतला आवरण होता है। यह सूत्र योजक पदार्थ (Cementing material) द्वारा आपस में संयुक्त होते हैं। इस योजक पदार्थ में पतले तन्तु होते हैं जो एक सूत्र से दूसरे सूत्र को बांधते है।

धारी विहीन मांसपेशियों को प्लेन (Plain) या स्मूथ (Smooth) मांसपेशी भी कहा जाता है। ये मांसपेशियाँ इच्छा के अधीन नहीं होती हैं। इनमें संकोच और विस्तार तालबद्ध होते हैं। इस प्रकार इन पेशियों में कार्य और विश्राम दानों ही कार्य साथ-साथ स्वत: होते हैं। इस कारण यह लम्बे समय तक कार्यक्षम बनी रहती हैं। यह धारीदार पेशियों की अपेक्षा विद्युत् उत्तेजनाओं (Electrical stimuli) द्वारा शीघ्र उत्तेजित होती हैं।

यद्यपि धारी विहीन मांसपेशीयों में स्वतंत्र रूप से संकुचित होने की क्षमता होती है परन्तु यह अनियमित (Irregular) तथा ऐंठनयुक्त (Spasmotic) होते हैं, तथा स्वतंत्र नाड़ी संस्थान के अधीन होने पर ही यह नियमित होते हैं। इन मांसपेशियों में दो प्रकार की नाडियाँ आती हैं, पहली वह जो इनकी क्रियाओं को रोकती हैं तथा दूसरी वह जो इनकी क्रियाओं को बढ़ा देती हैं।

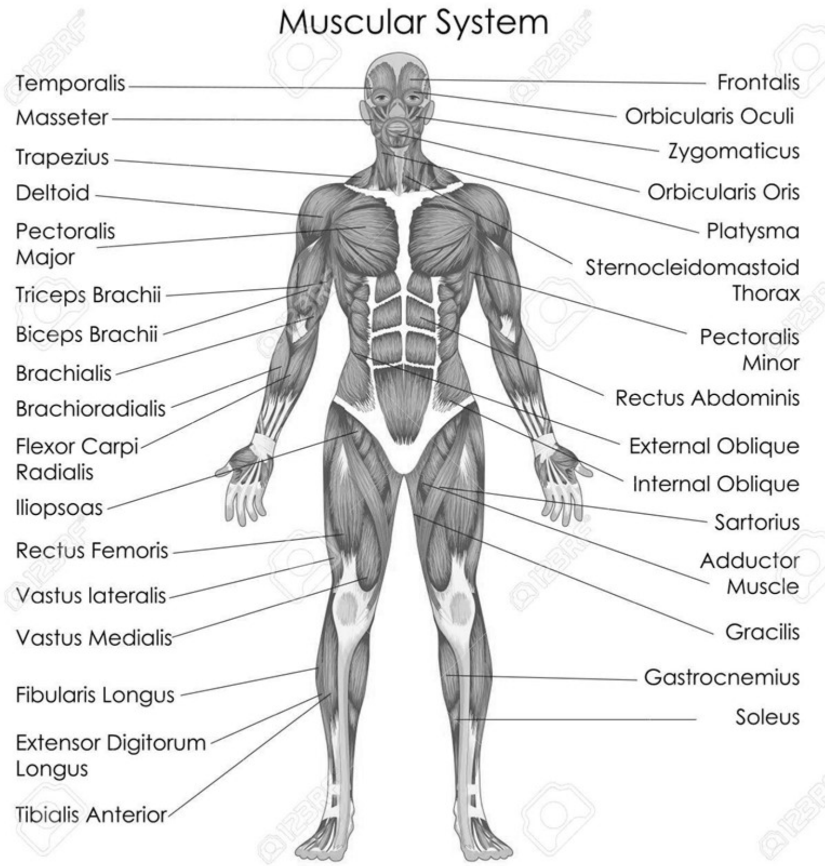

<u>**चित्र संख्या -6 (पेशियों की रचना)**</u>

3. हृदय पेशी (Cardiac Muscle)

यह एक विशिष्ट पेशी है। यह धारीदार परन्तु अनैच्छिक पेशी होने के कारण इसके संकोच शक्तिशाली होते हैं। तथा इस पर हमारी इच्छा शक्ति का कोई प्रभाव नहीं होती। इस मांसपेशी के सूत्र (Cardiac Muscle) जो एक दूसरे के समीप स्थित होते हैं, आपस में छोटी शाखाओं द्वारा जुड़े होते हैं। हृदय की मांसपेशी की निम्न विशेषतायें हैं-

1. इसमें संकोच तालबद्ध (Rhythmic) होता है।

2. हृदय की पेशी एक साथ सिकुड़ती है और फैलती है। इसके अलिन्द भाग की पेशी पूरी तरह संकुचित होती है और उसके बाद निलय भाग की पेशी पूरी संकुचित होती है।

3. हृदय निश्चित तीव्रता की उत्तेजना के साथ संकुचित होता है निर्बल संवेदनाएँ इसको

संकुचित नहीं कर सकती। कोई उत्तेजना यदि इसे उत्तेजित करने की क्षमता रखती है तो उसे पूरी तरह उत्तेजित करेगी। दुर्बल होने की दशा में उसे उत्तेजित नहीं कर पायेगी।

4. हृदय के संकोच काल में दी गयी उत्तेजना का कार्य करना बन्द कर देता है और उसके बाद उसे कृत्रिम रूप से उत्तेजित किया जाता है तो उसमें स्टेयर केस फिनेमिना पाया जाता है। इसका अभिप्राय यह है कि एक ही शक्ति की उत्तेजना द्वारा उसके पहले संकोच एक दूसरे की अपेक्षा अधिक अच्छे होते हैं। यह दूसरी धारीदार पेशियों के स्टेयर केस फिनोमिना से भिन्न है जिसमें उत्तेजना की तीव्रता के अनुसार उसमें संकोच की तीव्रता बढती है।

5. इसके मांससूत्र (Muscle fiber) सामान्य धारीदार पेशी के सूत्रों की अपेक्षा छोटे होते हैं। और उनकी धारियाँ कम स्पष्ट होती हैं। इसमें सारकोलेमा (Sarcolemma) को पहचाना नहीं जा सकता। इसके मांस सूत्र में एक न्यष्टि (Nucleus) होती है जो कि इसके संकोचशील पदार्थ के मध्य स्थित होती है। मांस सूत्रों के संयोग स्थल पर योजक पदार्थ (Cementing material) होता है।

शरीर की प्रधान पेशियों का परिचय

ऑक्सीपिटोफ्रन्टेलिस (Occipitofrontalis muscles) – यह अकेली बड़ी पेशी होती है, जिसमें दो भाग भाग होते है।

1. फ्रन्टेलिस।
2. ऑक्सीपिटेलिस।

इस पेशी के ललाटीय भाग से आँखों की भौहें ऊपर को उठती है तथा माथे की त्वचा पर झुर्रियाँ पड़ जाती है।

टेम्पोरेलिस पेशी (Temporalis muscle) – यह पेशी निचले जबड़े या मैण्डीब्ल को ऊपर उठाकर मुख को बंद करती है और भोजन चबाने में मदद करती है।

स्टरनोक्लीडोमैस्टॉयड पेशी (Sternocleidomastoid muscle) – जब एक ओर की पेशी संकुचित होती है तब यह शिर को

कंधे की ओर खींचती है अर्थात् सिर पीछे की ओर मुड़ जाता है जब दोनों ओर की पेशियाँ एक साथ संकुचित होती है तो पूरा सिर पीछे की ओर मुड़ जाता है।

लेटिसीमस डॉर्सी पेशी (Lattissimus dorsi muscle) – यह पीठ की निचले भाग में तथा वक्ष के पीछे भाग में एक सपाट पेशी होती है। इसका कार्य बांह का अभिवर्तन करना एवं उठी हुई बांह को नीचे की ओर दबाना होता है।

ट्रेपिजियस पेशी (Trapezius muscle) – यह पेशी गर्दन और वक्ष के पीछे स्थित रहती है तथा इसकी आकृति लगभग त्रिकोणाकार होती है, जिसका आधार गर्दन और वक्ष के ऑक्सीपिटल अस्थि के उभार (नीचे) से जुड़ा रहता है। इसका नुकीला भाग कन्धे के ऊपर एवं पीछे स्कैपुला अस्थि के स्पाइनस एवं एक्रमियन प्रवधों और क्लौविकल् से जुड़ा रहता है। इसके ऊपरी भाग के संकुचन से स्कैपुला ऊपर की ओर खिंचती है, जबकि निचले भाग के संकुचन से नीचे की ओर खिंचती है। जब सम्पूर्ण पेशी में संकुचन होता है, तो यह कन्धों (स्कैपुला) को पीछे की ओर यानि मेरूदण्ड की ओर खींचती है।

रैक्टस एब्डोमिनिस पेशी (Rectus Abdominis muscle) – यह उदर मध्य रेखा के दोनों ओर स्थित सबसे ऊपर की चौड़ी ओर सपाट पेशी होती है। यह मलोत्सर्ग तथा मूत्रत्याग में सहायता करती है।

डॉयफ्राम पेशी (Diaphragm muscle) – यह वक्ष और उदर को पृथक् करने वाली गुम्बद के आकार की रचना होती है जो उदर को छत का आकार प्रदान करती है। डायफ्राम में महाधमनी ग्रास नली तथा निम्न महाशिरा के लिए तीन बड़े छिद्र होते हैं। डायफ्राम के ऊपर ह्रदय, पेरिकार्डियम, फुफ्फुस स्थित होते हैं तथा डायफ्राम के नीचे यकृत, अमाशय, प्लीहा तथा दोनों वृक्क स्थित होते हैं डायफ्राम श्वसन क्रिया में भाग लेता है श्वसन की एक प्रमुख पेशी होने के अतिरिक्त डायफ्राम के नीचे आने पर उदर पर दबाव पड़ता है जिससे मूत्र और मल विसर्जन तथा प्रसव में सहयोग मिलता है।?

डेल्टायड पेशी (Deltiod muscle) – यह ह्यूमरस अस्थि को क्षैतिज स्थिति में लेकर आती है पेशी का अग्र भाग कंधे को भीतर को आंकुचित करता है जबकि पंच भाग इसे प्रचरित करता है।

बाईसेप्स पेशी (Biceps muscle) – यह पेशी ऊपरी बाहों में स्थित सबसे ऊपर की पेशी होती है यह स्कैपूला के दो जगहों से निकलती है यह पेशी बांह को आंकुचित करती है।

ट्राईसेप्स पेशी (Triceps muscle) – यह पेशी बाहु में पीछे की ओर स्थित रहती है। इसके लोंग लेटरल एवं शार्ट के दो शिरे (Long and short heads) होते हैं। लोंग हेड का उद्गम स्कैपुला के इन्फ्राग्लीनॉइड ट्यूबरक्ल से लेटरल हेड का ह्यूममरस के रेडियल ग्रूव के ऊपर पोस्टीरियर एवं लेटरल साइड से तथा मीडियल हेड का ह्यूमरस के रेडियल ग्रूव के नीचे पोस्टीरियर भाग से होता है और निवेशन कोहनी के जोड़ के पीछे अल्ना के ऑलीक्रेनॉन प्रवर्ध पर होता है।

ग्लूटियस मेक्सिमज पेशी (Gluteus maximus muscles) – यह नितम्ब को सन्धि प्रसारित करती है और जब टाँगे स्थिर रहती है तब यह धड़ को प्रसारित करती है।

सारटोरियस पेशी (Sartorius muscle) – यह जाँच में सामने की ओर सबसे अधिक लम्बी और फीते के आकार की होती है। इसका उद्गम एन्टीरियर सुपीरियर इलियक स्पाइन से होता है तथा निवेशन टिबिया के समीपस्थ सिरे की मीडियल सतह पर होता है। यह पेशी घुटने तथा नितम्ब सन्धि को मोड़ती है।

गैस्ट्रोनिमियस पेशी (Gastrocnemius muscle) – यह पेशी पिण्डली का माँसल भाग बनाती है तथा सोलीयस (Soleus) के पीछे की ओर स्थित रहती है। इसका उद्गम फीमर के एपिकाण्डाइल्स से होता है तथा निवेशन कैल्केनियस की पोस्टीरियर सतह पर होता है। यह टखने (Ankle) का प्लान्टर फ्लेक्शन (ऊपर की ओर मुड़ाव) करती है तथा घुटने को मोड़ती है।

योगा का पेशी तंत्र पर प्रभाव –

अन्य संस्थानों के समान योग का प्रभाव पेशी संस्थान पर भी पड़ता है।

1. भुजंगासन, पद्मासन तथा धनुरासन के द्वारा मांस पेशियाँ दृढ होती हैं।

2. अधिक परिश्रम के कारण मांसपेशियों में लैक्टिक एसिड़ जमा हो जाता है। यह शरीर में थकावट पैदा करता है। विश्राम की दशा में यह रक्त द्वारा यकृत में ले जाया जाकर जला दिया जाता है या ग्लाईकोजन में बदल दिया जाता है। इस थकावट को दूर करने के लिये शवासन, दण्ड़ासन विशेष लाभ करते हैं। इसमें मांस पेशियों की थकान दूर होती है।

3. मांसपेशियों में एकत्र मलों को निष्कासित करने के लिए, मांसपेशी पर दबाव डालने वाले आसन का अभ्यास करना चाहिये। इससे रक्त संचार बढता है और मांसपेशियों में स्फूर्ती आती है। गरूड़ासन हाथ और पैरों के स्नायुओं को खोलता है। पैर की पिण्डली व स्नायु की थकान मिटाता है। वज्रासन भी पिंड़लियों की थकान मिटाता है। पद्मासन से पेट व पीठ के स्नायु दृढ़ होते हैं। वृश्चिकासन शरीर के सभी स्नायुओं को शुद्ध करता है।

4. व्यायामपरक आसन रक्त संचार प्रणाली को उत्तेजित करते हैं। इसके कारण मांसपेशियों में रक्त का अच्छा प्रवाह होने से पेशियाँ दृढ़ होती हैं।

5. धनुरासन के नियमित अभ्यास से पेट की सभी मांस पेशियाँ क्रियाशील होती हैं और छोटी आँते क्रियाशील हो जाती हैं।

6. सर्वांगासन शरीर के सभी स्नायुओं और पेशियों को लचीला बनाता है जिससे शरीर के सभी अंग चुस्त व फुर्तीले होते हैं।

7. पश्चिमोत्तनासन मेरूदण्ड़ के स्नायुओं को लचीला बनाता है जिससे मेरूदण्ड के विकार हटते हैं।

श्वसन तन्त्र
(Respiratory System)

वायुमण्डल से ऑक्सीजन के अन्तर्ग्रहण करने की क्रिया को श्वसन कहा जाता है, जो कि श्वसन संस्थान के द्वारा संपादित होती है। श्वसन क्रिया वस्तुतः दो भिन्न-भिन्न क्रियाओं प्रश्वसन एवं नि:श्वसन का सम्मिलित रूप है। जिस क्रिया के द्वारा वातावरणीय वायु को अन्दर लिया जाता है, उसे प्रश्वसन तथा जिसके द्वारा त्याज्य गैसों को बाहर निकाला जाता है उसे नि:श्वसन कहा जाता है।

श्वसन की पहली क्रिया केशिकाओं और वायुकोशों के मध्य होती है, जिसे **'बह्य-श्वसन'** अथवा **'फुफ्फुसीय श्वसन'** कहा जाता है तथा दूसरी क्रिया रक्त कोशिकाओ और ऊतकों के मध्य होती है, जिसे **'अन्त:श्वसन'** अथवा **'श्वसन'** कहा जाता है।

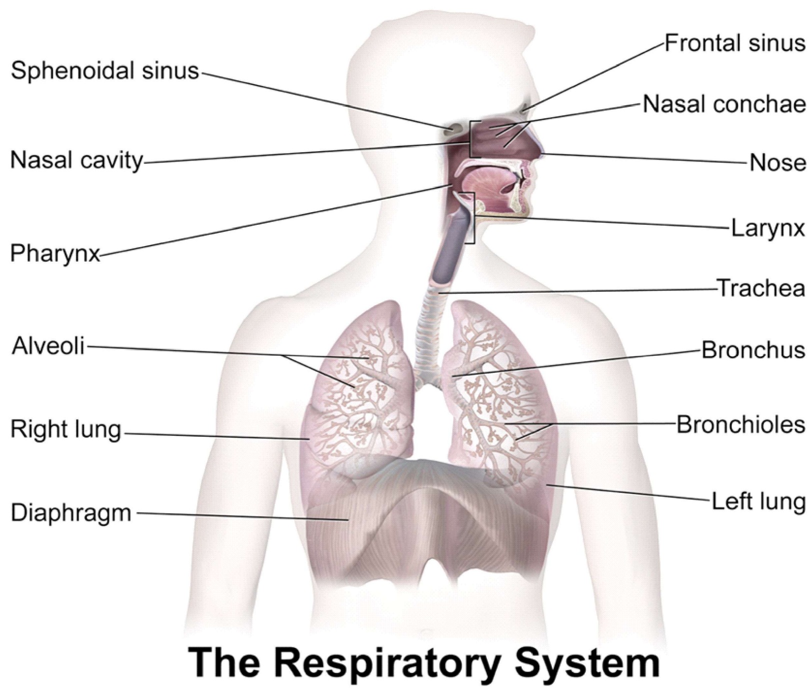

<u>चित्र संख्या -7 (श्वसन तंत्र की रचना)</u>

बाह्य श्वसन या फुफ्फुसीय श्वसन

जब प्रश्वसित वायु वायुकोषों में पहुँचती है तब यह वायुकाषों के चारों ओर स्थित पल्मोनरी धमनियों के कोशिकीय जाल में विद्यमान रक्त के नजदीकी सम्पर्क में रहती है। 100 मिमी. पारे के दाब पर वायुकोषों में विद्यमान ऑक्सीजन 40 मिमी. पारे के दाब पर शिरीय रक्त में विद्यमान ऑक्सीजन के सम्पर्क में आती है। इसलिए जब तक दोनों दाब बराबर नहीं हो जाते, गैस रक्त में विसरित होती रहती है। इसी समय रक्त में उपस्थित कार्बन डाइऑक्साइड 46 मिमी. पारे के दाब पर वायुकोषीय कार्बन डाइऑक्साइड के सम्पक्र मे 40 मिमी. पारे के दाब पर आती है और गैस रक्त के बाहर विसरित होकर वायुकोषों में आ जाती है। इस प्रकार नि:श्वसित वायु की गैसीय संरचना परिवर्तित हो जाती है, अर्थात उसमें आक्सीजन कम और कार्बन डाइऑक्साइड ज्यादा रहती है। नाइट्रोजन की मात्रा बराबर रहती है।

आन्तरिक या कोशिकीय श्वसन

बाह्य श्वसन में वायुकोषों में विद्यमान ऑक्सीजन विसरण द्वारा धमनियों की केशिकाओं के रक्त में मिल जाती है। कुछ ऑक्सीजन रक्त प्लाज्मा में घुल जाती है तथा शेष हीमोग्लोबीन से संयुक्त हो जाती है, जिसे अब ऑक्सीहीमोग्लोबिन कहते हैं। यह रक्त शुद्ध माना जाता है। यह शुद्ध रक्त मल्मोनरी शिराओं द्वारा हृदय के बाएँ अलिन्द में पहुँचाता है और फिर बाएँ निलय में पहुँचकर महाधमनी एवं इसकी शाखाओं एवं उपशाखाओं में होता हुआ सम्पूर्ण शरीर में फैल जाता है। शरीर की उतक कोशिकाओं एवं धमनीय रक्त केशिकाओं के बीच गैसों का आदान-प्रदान होता है। यहाँ उतक कोशिकाओं में ऑक्सीजन का दाब कम रहता है, जिससे विसरण द्वारा रक्त की ऑक्सीजन केशिकाओं की भित्तियों को पार करके ऊतक कोशिकाओं में चली जाती है। इसी समय ऊतकों में निर्मित कार्बन डाइऑक्साइड विसरण द्वारा केशिकाओं के रक्त में पहुँच जाती है। इस प्रकार रक्त एवं ऊतकों के बीच गैसों का आदान-प्रदान या आन्तरिक श्वसन होता है।

श्वसन क्रिया का नियंत्रण

तंत्रिका तत्रं के मेडुला आब्लॉन्गेंटा में स्थित श्वसन केन्द्र द्वारा श्वसन क्रिया नियंत्रित होती है। रक्त में कार्बन डाईआक्साइड की मात्रा बढने पर बड़ी धमनियों की विशिष्ट कोशिकाएँ उत्तेजित होती हैं। वेगस तथा ग्लॉसोफ्रेन्जियल स्नायुओं द्वारा आवेग श्वसन केन्द्र तक जाते हैं, फ्रेनिक स्नायुओं द्वारा आवश्यक आवेग श्वसन केन्द्र से डायफ्राम तक आते हैं तथा इन्टरकॉस्टल स्नायुओं द्वारा श्वसन केन्द्र से डायफ्राम तक आते हैं। ये स्नायु पेशियों को संकुचित करते हैं और इस प्रकार प्रश्वसन होता है।

श्वसन क्षमताएं व आयतन–

फेफडों एवं चारों ओर की वायु के बीच वायु के आदान-प्रदान को एवं फेफडों में वायु की मात्रा को निम्न आयतनों एवं धारिताओं में विभाजित किया गया है।

प्राणवायु या श्वास आयतन– यह वायु की वह मात्रा है, जो सामान्य शान्त श्वसन के दौरान प्रश्वसित एवं नि:श्वसित की जाती है, जो स्त्रि एवं पुरूषों दोनों में लगभग 500 मिली होती है।

प्रश्वसित आरक्षित आयतन– वायु की वह मात्रा है, जो बलपूर्वक दीर्घ प्रश्वास लेकर भीतर ली जाती है। सामान्य श्वास आयतन से अधिक वायु ही प्रश्वसित आरक्षित आयतन होता है, जो पुरूषों में 330 मिली तथा स्त्रियों में 1900 मिली होता है।

नि:श्वसित आरक्षित आयतन– वायु की वह मात्रा, जो सामान्य नि:श्वसन के बाद (प्राण वायु के निकल जाने के बाद) फेफडों से बलपूर्वक बाहर निकाली जाती है। इसका आयतन पुरूषों में 1000 मिली तथा स्त्रियों में 700 मिली होता है।

अवशिष्ट आयतन– यह वायु की वह मात्रा है, जो गहरे से गहरे नि:श्वास के बाद भी फेफडों में शेष रह जाती है। अवशिष्ट वायु का आयतन पुरूषों में 1200 मिली· तथा स्त्रियों में 1100 मिली· होता है।

श्वसन की क्रिया-विधि

श्वसन क्रिया दो भागों में होती है-प्रश्वसन (inspiration) एवं नि:श्वसन (expiration)।

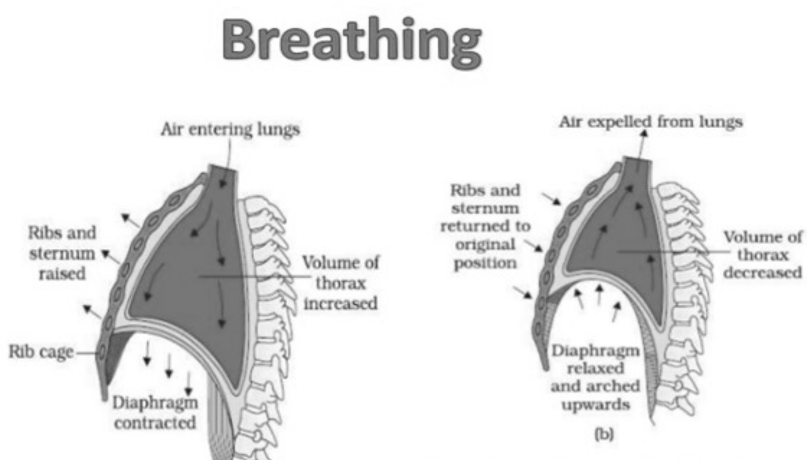

Figure 17.2 Mechanism of breathing showing : (a) inspiration (b) expiration

प्रश्वसन के दौरान इन्टरकॉस्टल पेशियाँ एवं डायफ्राम, दोनों तंत्रिकाओं से उद्दीप्त होकर साथ-साथ संकुचित होते हैं, जिससे वक्षीय गुहा का आयतन बढ जाता है और फेफड़े, जो प्रत्यास्थपूर्ण होते हैं, इस बढे हुए खाली स्थान को भरने के लिए फैलते हैं। इनके फैलने से वायु पथों और फेफडों में विद्यमान वायुकोषों में दाब बाह्य वातावरणीय वायु के दाब से कम हो जाता है, जिससे बाह्य वातावरणीय वायु खिंचकर वायु पथों से होकर फेफडों के वायुकोषों में प्रविष्ट हो जाती है। यही क्रिया **'प्रश्वसन'** (inspiration) कहलाती है, क्योंकि इसी के द्वारा बाह्य वायु फेफड़ों के भीतर खिंच आती है।

नि:श्वसन (expiration) के दौरान इन्टरकॉस्टल पेशियाँ एवं डायफ्राम दोनों शिथिल हो जाते हैं। इनके शिथिल होने से वक्षीय गुहा संकुचित हो जाती है, जिससे फेफडों पर दबाव पडता है और फेफडों के भीतर की कार्बन डाइऑक्साइड से युक्त वायु श्वास पथों से होकर बाहर निकल जाती है। वायु का बाहर निकलना ही नि:श्वसन कहलाता है।

उपर्युक्त दोनों क्रियाओं अर्थात् प्रश्वसन और नि:श्वसन का क्रम जीवनपर्यन्त चलता रहता है। यह एक स्वत: प्रेरित क्रिया है। इसी के कारण हर एक श्वास के साथ वायु का भीतर खिंच आना और फिर बाहर निकलना, जीवनपर्यन्त चलता रहता है।

गैसीय विनिमय
(Gaseous Exchange)

शरीर के अन्दर गैसों का विनिमय या आदान-प्रदान फेफडों में विद्यमान वायुकोषों (alvoli) एवं इनके चारों ओर स्थित रक्त केशिकाओं के बीच, जिसे **बाह्य-श्वसन** (external respiration) कहते हैं तथा रक्त केशिकाओं एवं शरीर की ऊतक कोशिकाओं के बीच, जिसे आन्तरिक श्वसन (internal respiration) कहते हैं, दोनों स्थानों पर होता है। गैसों का विसरण भौतिकी के प्रारम्भिक नियम के अनुसार सर्वथा उच्च दबाव से कम दबाव की ओर होता है।

श्वास के साथ अन्दर ली हुई (प्रश्वसित) वायु में कई गैसें रहती हैं, जिसकी संरचना निम्न है-

नाइट्रोजन-	79 प्रतिशत
ऑक्सीजन-	21 प्रतिशत
कार्बन डाइऑक्साइड-	0.04 प्रतिशत

जल में वाष्प एवं अन्य गैसें अत्यन्त अल्प मात्रा में।

श्वसन क्षमता

प्रश्वसित क्षमता- यह प्रश्वसित आरक्षित आयतन एवं श्वास आयतन (प्राणवायु) के

कुल योग के बराबर होती है। यह वायु की वह मात्रा है, जिसे व्यक्ति अन्दर ले सकता है। इसका आयतन पुरूषों में 3800 मिली तथा स्त्रियों में 2400 मिली होता है।

कार्यात्मक अवशिष्ट क्षमता - यह वायु की वह मात्रा है, जो सामान्य नि:श्वसन के उपरान्त फेफडों में रह जाती है। यह नि:श्वसित आरक्षित वायु एवं अवशिष्ट वायु के आयतन के योग के बराबर होती है। इसका आयतन पुरूषों में 2200 मिली. तथा स्त्रियों में 1800 मिली होता है।

फेफडों की कुल वायुधारिता- यह फेफडों की प्राणभूत वायु क्षमता एवं अवशिष्ट वायु आयतन का कुल योग है। यह वायु का वह अधिकतम आयतन है, जिससे फेफडों को पूरी शक्ति के साथ फैलाया जा सकता है। इसका आयतन पुरूषों में 6000 मिली तथा स्त्रियों में 4200 मिली होता है। इसे स्पाइरोमीटर द्वारा नहीं नापा जा सकता है।

फेफड़ों की प्राणभूत वायु क्षमता- फेफड़ों की प्राणभूत वायु क्षमता का आयतन प्रश्वस्तित आरक्षित वायु, प्राण वायु एवं नि:श्वसित आरक्षित वायु के कुल योग के बराबर होता है। यह वायु की वह अधिकतम मात्रा है, जिसे व्यक्ति अधिकतम गहरी साँस लेने के पश्चात् फेफड़ों से बाहर निकाल सकता है। यह सामान्य स्वस्थ पुरूषों में 4800 लीटर तथा स्त्रियों में 3100 लीटर होती है।

फेफडों में वायु के आयतन एवं धारिता (Volumes and capacities of air in the Lungs)

फेफडों एवं चारों ओर की वायु के बीच वायु के आदान-प्रदान को एवं फेफडों में वायु की मात्रा को निम्न आयतनों एवं धारिताओं में विभाजित करके वर्णित किया जाता है। इन्हें एक विशेष यन्त्र स्पाइरोमीटर (spirometer) ये नापा जाता है।

प्राण वायु या श्वसन आयतन (Tidal volume) - यह वायु की वह मात्रा है, जो स्त्री एवं पुरूषों दोनों में लगभग 500 मिली होती है।

प्रश्वसित आरक्षित आयतन (Inspiratiory reserve volume or complementary air) - वायु की वह मात्रा है, जो बलपूर्वक दीर्घ प्रश्वास लेकर भीतर ली जाती है। सामान्य श्वास आयतन से अधिक वायु ही प्रश्वसित आरक्षित आयतन होता है, जो पुरूषों में 3300 मिली तथा स्त्रियों में 1900 मिली होता है।

नि:श्वसित आरक्षित आयतन (Expiratory reserve volume supplementary air) - वायु की वह मात्रा, जो सामान्य नि:श्वास के बाद (प्राण वायु के निकल जाने के बाद) फेफडों से और वायु बलपूर्वक बाहर निकाली जाती है। इसका आयतन पुरूषों में 1000 मिली तथा स्त्रियों में 700 मिली होता है।

अवशिष्ट आयतन (Residual volume) - यह वायु की वह मात्रा है, जो गहरे से गहरे नि:श्वसन के बाद भी फेफडों में शेष रह जाती है। अवशिष्ट वायु का

आयतन पुरूषों में 1200 मिली· तथा स्त्रियों में 1100 मिली· होता है।

प्रश्वसित क्षमता (Inspiratory capacity) – यह प्रश्वसित आरक्षित आयतन एवं श्वास आयतन (प्राणवायु) के कुल योग के बराबर होता है। यह वायु की वह मात्रा है, जिसे व्यक्ति अन्दर ले सकता है। इसका आयतन पुरूषों में 3800 मिली तथा स्त्रियों में 2400 मिली होता है।

कार्यात्मक अवशिष्ट क्षमता (Functional residual capacity) – यह वायु की वह मात्रा है, जो सामान्य निःश्वसन के उपरान्त फेफडों में रह जाती है। यह निःश्वसित आरक्षित वायु एवं अवशिष्ट वायु के आयतन के योग के बराबर होती है। इसका आयतन पुरूषों में 2200 मिली तथा स्त्रियों में 1800 मिली होता है।

फेफड़ों की कुल वायुधारिता (Total lung capacity)- यह फेफडों की प्राणभूत वायु क्षमता एवं अवशिष्ट वायु आयतन का कुल योग है। यह वायु का वह अधिकतम आयतन है, जिससे फेफडों को पूरी शक्ति के साथ फैलाया जा सकता है। इसका आयतन पुरूषों में 6,000 मिली तथा स्त्रियों में 4,200 मिली होता है। इसे स्पाइरोमीटर द्वारा नहीं नापा जा सकता है।

फेफड़ों की प्राणभूत वायु क्षमता (Vital capacity of the lungs)- फेफड़ों की प्राणभूत वायु क्षमता का आयतन प्रश्वस्तित आरक्षित वायु, प्राण वायु एवं निःश्वसित आरक्षित वायु के कुल योग के बराबर होता है। यह वायु की वह अधिकतम मात्रा है, जिसे व्यक्ति अधिकतम गहरी साँस लेने के पश्चात् फेफड़ों से बाहर निकाल सकता है। यह सामान्य स्वस्थ पुरूषों में 4800 लीटर तथा स्त्रियों में 3100 लीटर होती है।

श्वसन तन्त्र पर योग का प्रभाव-

1·प्राणायाम का श्वसन पर आश्चर्यजनक प्रभाव पड़ता है। प्राणायाम के द्वारा श्वसन संस्थान की मांसपेशियाँ सुदृढ होती हैं तथा फेफड़े लचकदार बनते हैं।

2· प्राणायाम द्वारा फेफड़ों की वाइटल कैपिसिटी बढ़ जाती है तथा फेफडों की क्षमता में विकास होता है।

3· श्वास द्वारा बहुत अधिक मात्रा में प्राण वायु (आक्सीजन) मिलती है। जिससे शरीर सबल होता है। स्फूर्ति पैदा होती है तथा ओज तेज में वृद्धि होती है।

4· प्राणायाम में खूब गहरा श्वास लिया जाता है जिससे फेफडों के उन हिस्सों में वायु पहुँचती है, यथा फेफडों के ऊपरी भाग में जहाँ पर सामान्य अन्तःश्वसन द्वारा ली गई वायु नहीं पहुँच पाती है। इससे वे स्थान स्वच्छ हो जाते हैं और वहाँ पर राजयक्ष्मा आदि रोगों के जीवाणु नहीं पनप पाते।

5· नियमित प्राणायाम के अभ्यास से प्रति मिनट श्वास की संख्या घट जाती है और आयु दीर्घ होती है।

6. प्राणायाम के द्वारा वागस नाड़ी की क्रियाशीलता बढ़ जाती है।
7. प्राणायाम द्वारा हिक्का, कास, श्वास तथा वायु विकार नष्ट होते हैं।
8. नाडीशोधन प्राणायाम नाडियों को शुद्ध करता है तथा फेफडों के दोष दूर करता है। मन को स्थिर करता है।
9. कपालभाति के द्वारा नासा-छिद्रों व श्वास संस्थान का शोधन हो जाता है।
10. तमक श्वास या दमें की दशा में सर्वांगासन, भुजंगासन, शवासन, शलभासन, भस्त्रिका, कपालभाति व उज्जायी प्राणायाम का नियमित अभ्यास करें।
11. प्राणायाम के साथ शलभासन करने से फेफडों के विकार नष्ट होते हैं।
12. मत्स्यासन श्वास नली के शोथ को दूर करता है।
13. ताड़ासन के प्रयोग से फेफड़े पुष्ट और सक्रिय बनते हैं।

प्राण की परिभाषा और भेद-

हमने बहुत बार अपने जीवन में व्यवहारिक रूप रूप से 'प्राण' शब्द का उपयोग किया है। प्राण वायु का एक रूप है, जब वह हवा आकाश में चलती है तो उसे वायु कहते हैं और जब यही वायु हमारे शरीर में 10 भागों में काम करती है तो इसे 'प्राण' कहते हैं। वायु का पर्यायवाची नाम प्राण ही है। प्राण, योग के ग्रन्थों और आयुर्वेद इत्यादि में जीवनी शक्ति को कहा गया है। आयुर्वेद, तन्त्र इत्यादि में पाँच प्रकार के प्राण तथा पाँच उपप्राण बताये गये है:

1. प्राण - नाग
2. अपान - कूर्म
3. समान - कृकल
4. उदान - देवदत्त
5. व्यान - धनञ्जय

इनके स्थानों का वर्णन करते हुए गया है कि- हृदयस्थल में प्राण, गुदास्थान में अपान, नाभिमण्डल में समान, कण्ठप्रदेश में उदान और समस्तशरीर में व्यान व्याप्त है। नाग आदि पाँच उपप्राण हैं और वे शरीर में क्रमशः डकार, पलकों का झपकना, भूख-प्यास, जंभाई और पांचवी हिचकी - ऐसे कार्य करते हैं।

अन्तः स्रावी तंत्र
(Emdocrine System)

अन्तःस्रावी संस्थान या तन्त्र शरीर का प्रमुख संस्थान है जो तन्त्रिका-तन्त्र (Nervous system) के साथ मिलकर शरीर की विभिन्न क्रियाओं का नियमन करता है।

अन्त:स्रावी संस्थान ऊतकों या अंगों जिन्हें 'अन्त:स्रावी ग्रन्थियाँ' (Endocrine glands) कहा जाता है, से मिलकर बनता है। ये ग्रन्थियाँ ये ग्रन्थियाँ विशेष रसायन जिन्हें हार्मोन कहते हैं को एक्ट्रासेल्यूलर स्थानों में स्रावित करती हैं, जहाँ से ये सीधे रक्त धारा में पहुँच जाते हैं और सम्पूर्ण शरीर में रक्त के साथ परिसंचारित होते हुए उस लक्ष्य अंग में पहुँच जाते हैं जिस पर उनकी क्रिया उपेक्षित होती है। इस प्रकार की ग्रन्थियों में वाहिकाएँ या नलियाँ नहीं होतीं, अत: इन्हें वाहिकाविहीन ग्रन्थियाँ भी कहा जाता है।

अन्त:स्रावी ग्रन्थियों के अतिरिक्त शरीर के भीतर बहि:स्रावी ग्रन्थियाँ जैसे स्वेद-ग्रन्थियाँ, लार-ग्रन्थियाँ, अग्नाशय और यकृत आदि भी रहती हैं, जिनमें वाहिकाएँ या नलियाँ होती हैं, जिनसे होकर इनका स्राव या रस किसी विशेष अंग में पहुँचकर अपना कार्य करता है। चूँकि इनमें वाहिकाएँ या नलियाँ होती हैं, अत: इन्हें वाहिकामय ग्रन्थियाँ भी कहा जाता है।

हॉर्मोन्स (Hormones)

हॉर्मोन किसी अन्त: स्रवी कोशिका अथवा ऊतक द्वारा उत्पादित एवं स्रावित एक विशिष्ट रसायन होता है। रक्तधारा में पहुँचकर ये हॉर्मोन्स शरीर के समस्त भागों में परिसंचरित होते हैं किन्तु इनकी क्रिया केवल विशिष्ट लक्ष्य कोशिकाओं पर ही होती है। भिन्न-भिन्न हॉर्मोन्स के लक्ष्य स्थल भिन्न-भिन्न होते हैं। इन्हें रासायनिक दूत भी कहा जाता है। हॉर्मोन्स अति सूक्ष्म मात्रा में उत्पादित होते हैं और प्रत्येक हॉर्मोन का एक निश्चित कार्य होता है। ये मुख्यत: प्रोटीन यौगिक होते हैं, लेकिन कुछ स्टीरॉयड्स भी होते हैं।

अन्त: स्रावी ग्रन्थियाँ हॉर्मोन्स का स्रावण निरन्तर रूप से करती हैं लेकिन शरीर की आवश्यकताओं के अनुसार स्राव की मात्रा कम या अधिक हो सकती है। हॉर्मोन्स का रक्त में सामान्य मात्रा से अधिक होना दोनों ही स्वास्थ्य के लिए हानिकारक हैं।
अन्त: स्रावी व बर्हिस्रावी ग्रन्थियाँ- अन्त: स्रावी संस्थान अन्त: स्रावी ग्रन्थियों से मिलकर बना होता है। ग्रन्थि संस्थान शरीर के रखरखाव और वृद्धि के लिये उत्तरदायी कई प्रकार की ग्रन्थियों से मिलकर बना होता है। ये ग्रन्थियाँ निम्न दो प्रकार की होती हैं-

1. बर्हिस्रावी-
2. अन्त: स्रावी-

बर्हिस्रावी ग्रन्थियाँ रासायनिक पदार्थो का स्राव करती हैं, जैसे पसीना, अश्रु और लार आदि इन्हें नलिकामय ग्रन्थियाँ भी कहा जाता है। ये ग्रन्थियाँ, श्वेद ग्रन्थियाँ, लार ग्रन्थियाँ, यकृत एवं अग्नाशय आदि हैं। अन्त: स्रावी ग्रन्थियों का स्राव सीधे रक्त में

मिल जाता है, और रक्त के साथ घूमते हुए शरीर के उस भाग मे पहुँच जाता है जहाँ उसकी क्रिया होती है।

एन्जाइम और हार्मोन में अन्तर-

1. सभी एंजाइम प्रोटीन हैं लेकिन सभी हार्मोन प्रोटीन नहीं हैं।

2. एंजाइम को स्रावित किया जाता है और एक ही स्थान पर कार्य करते हैं जबकि हार्मोन का स्राव और सक्रियण विभिन्न स्थानों पर होता है।

3. एंजाइम चयापचय में भाग लेते हैं जबकि हार्मोन मेटाबोलिक गतिविधियों को विनियमित करते हैं।

4. एंजाइम सबस्ट्रेट विशिष्ट होते हैं जबकि हार्मोन लक्ष्य कोशिका, ऊतक या तंत्र के लिए विशिष्ट होते हैं।

5. अवरोधक अणु नियंत्रण और एंजाइमिक गतिविधि को कम करते हैं जबकि अवरोधी हार्मोनल गतिविधि को रोकते हैं।

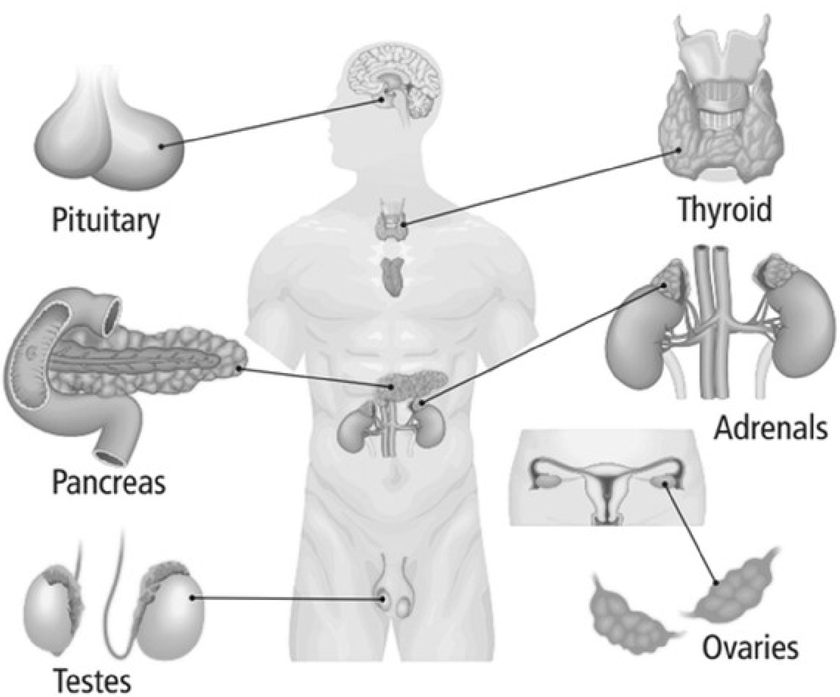

<u>चित्र संख्या -8 (मुख्य अन्तः स्रावी ग्रन्थियाँ)</u>

पीयूष ग्रन्थि

मानव शरीर की रचना में पीयूष ग्रन्थि या (Hypophysis) एक मटर के

आकार की अन्त: स्रावी ग्रन्थि है। मनुष्यों में इसका वजन 0.5 ग्राम होता है। यह सेला टर्निका (Sells Turnica) या हाइपोफाइसियल फोसा (Hypophysial Fosa) में हाइपोथैलेमस के नीचे स्थित होती है। पीयूष ग्रन्थि एक अति महत्वपूर्ण अन्त: स्रावी ग्रन्थि है जिसे मास्टर ग्रन्थि (Master Gland) भी कहा जाता है क्योंकि इससे उत्पन्न हॉर्मोन्स (Hormones) अन्य अन्त: स्रावी ग्रन्थियों की सक्रियता को उद्दीप्त करते हैं। पीयूष ग्रन्थि शरीर के विकास में तथा शरीर में पानी के संतुलन को बनाये रखने में सहायता करती है।

पीयूष ग्रन्थि दो खण्डों में विभाजित होती है। पहले खण्ड को अग्रखण्ड या एडीनोहाइपोफाइसिस (Anterior lobe or adenohypophysis) कहा जाता है और दूसरे खण्ड को पश्च खण्ड या न्यूरोहाइपोफाइसिस (posterior lobe or neurohypophysis) कहा जाता है। इन दोनों खण्डों की संरचना एवं कार्यो में अंतर है।
अग्रभाग उपकला कोशिका (Epithelial cell) का समूह है जो रक्त चैनलों से विभाजित होता है। इसके विपरीत पश्च खण्ड मस्तिष्क से सम्बन्धित होता है और तन्त्रिका तंत्र से निर्मित होता है एवं प्रत्यक्ष रूप से हाइपोथैलेमस से जुडा रहता है। अग्रखण्ड व पश्च खण्ड से अलग-अलग हॉर्मोस का स्राव होता है जो विभिन्न कार्यो के लिए उपयोगी होते हैं।

अग्र खण्ड (Anterior pitutary or Adenohypophysis)

अग्रखण्ड निम्न सात हॉर्मोन्स का निर्माण करता है-

अग्रखण्ड से स्रवित होने वाले हॉर्मोन्स

1. वृद्धि हार्मोन (Groth Hormone or Somatotropic hormone)
2. थाइरॉइड़ उद्दीपक हॉर्मोन (Thyroid stimulating hormone, TSH)
3. इड्रिनोकॉर्टिकोट्रॉपिक हॉर्मोन (Adrenocorticotropic hormone)
4. ल्यूटिनाइजिंग हॉर्मोन (Lutinizing Hormone LH)
5. प्रोलैक्टिन (Prolactine)
6. फॉलिकल उद्दीपक हॉर्मोन (Follicle stimulating hormone FSH)
7. मैलेनोसाइट उद्दीपक हॉर्मोन (Melanocyte stimulating hormone MSH)

1.वृद्धि (Growth Hormone GH) या सोमेटोट्रापिक हॉर्मोन (Somatotropic Hormone)

यह हार्मोन शरीर के किसी विशिष्ट लक्ष्य अंग को प्रभावित करने के बजाय, शरीर के उन समस्त भागों को प्रभावित करता है जो भाग वृद्धि से सम्बद्ध होते हैं। यह वृद्धि दर को बढाता है और परिपक्वता की स्थिति निर्माण के बाद वृद्धि को बनाये रखता है।

इससे शरीर की वृद्धि और विशेषकर लम्बी अस्थियों की वृद्धि का नियमन होता है। यह एक प्रोटीन पर आधारित पेप्टाइड हॉर्मोन है। यह मनुष्यों और अन्य जानवरों में वृद्धि, कोशिकाओं प्रजनन और पुनर्निर्माण को प्रोत्साहित करता है। बच्चों और किशोरों में ऊँचाई बढ़ाने के अलावा वृद्धि हॉर्मोन के शरीर पर कई अन्य प्रभाव भी होते हैं। कैल्शियम के धारण में वृद्धि करता है और हड्डी के खनिजीकरण को बढाता व उसको मजबूत करता है। वसा अपघटन को बढ़ावा देता है। प्रोटीन संश्लेषण बढता है। मस्तिष्क को छोड़कर सभी आंतरिक अवयवों के विकास को प्रोत्साहित करता है। यकृत में ग्लुकोज के जमाव को कम करता है आदि।

वृद्धि हार्मोन की कमी के प्रभावः-

बच्चों में वृद्धि लोप (Groth failure) और छोटा कद (Short Structure) वृद्धि हॉर्मोन की कमी के मुख्य लक्षण हैं।

वृद्धि हार्मोन की अधिकता के प्रभावः-

वृद्धि हॉर्मोन के बाहुल्य के कारण जबड़े, हाथ व पैरों की हड्डियाँ मोटी हो जाती हैं। इसे एक्रोमिगेली (Acromegaly) कहते हैं।

साथ में होने वाली समस्याओं में पसीना आना, नाडियों पर दबाव, पेशियों की शिथिलता, यौन क्रिया में कमी आदि हैं।

2. थाइरॉइड उद्दीपक हार्मोन (Thyroid stimulating hormone, TSH)

यह थाइरॉयड ग्रन्थि की वृद्धि और उसकी क्रियाशीलता को उद्दीप्त करता है जिससे थाइरॉक्सिन (T4) और ट्राइआयडो थाइरोनीन (T3) हॉर्मोन स्रावित होते हैं। जब रक्त में T3 व T4 हॉर्मोन अधिक हो जाते हैं तो TSH का स्रावण कम हो जाता है और जब रक्त में T3 व T4 कम हो जाता है तो TSH का स्रावण ज्यादा हो जाता है। TSH की अत्यधिक मात्रा होने से थाइरॉयड ग्रन्थि में रक्त प्रवाह बढ जाता है जिसके परिणाम-स्वरूप कोशिकाएँ अत्यधिक बढ जाती हैं और थाइरॉयड ग्रन्थि बढ जाती है जिसे गलगण्ड (goitre) कहते हैं।

थाइरॉइड उद्दीपक हार्मोन की कमी के प्रभाव-

ऊतकों में कमी, गलगंड रोग, वजन बढना, माँसपेशियों में अकड़न आदि थाइरॉइड उद्दीपक हार्मोन की कमी के लक्षण हैं।

थाइरॉइड उद्दीपक की अधिकता के प्रभाव-

थाइरॉइड ग्रन्थि की अति अथवा थाइरॉइड ग्रन्थि से अत्यधिक मात्रा में हॉर्मोन का स्रावण होने से हाइपर थाइरॉइडिज्म **(Hyperthyroidism)** नामक स्थिति उत्पन्न हो जाती है। इस स्थिति में नेत्रोत्सेधी गलगण्ड **(Exophthalmic goitre)** हो जाता है। इस रोग के लक्षणों में आँखें बाहर को उभर जाती हैं, नाडी गति बढ़ जाती है, त्वचा

मुलायम और नम रहती है तथा रोगी को गर्मी का अनुभव अधिक होता है। अधिक भूख के बावजूद वजन कम होने जगता है। अंगुलियों में कम्पन्न और हृदय गति तीव्र हो जाती है। वास्तव में थाइरॉइड ग्रन्थि की अति सक्रियता 'आयोडीन' की कमी के कारण होती है।

3. एड्रिनोकॉर्टिकोट्रॉपिक हॉर्मोन (Adrenocorticotropic hormone ACTH)

यह भी एक अत्यन्त महत्वपूर्ण हॉर्मोन है जो पियूष ग्रन्थि से स्रावित होता है। इड्रिनोकॉर्टिकोट्रॉपिक हॉर्मोन अधिवृक्क प्रांतस्था (adrinal cortex) की कोशिकाओं पर कार्य करता है और उसे ग्लूकोकोर्टिकोइड जैसे कार्टिसोल (cortisel), मिनरलोकोर्टिकोइड (mineralocorticoid) जैसे एल्डोस्टेरोन (aldostone), एन्ड्रोजन (androgen) जैसे पुरूष सैक्स हॉर्मोन टेस्टोस्टेरोन (testoerone) आदि उत्पन्न करने के लिए उत्तेजित करता है।

-इसकी अधिकता से कुशिगं (cushing syndrome)रोग हो जाता है।

4. ल्यूटिनाइजिंग हॉर्मोन (Luteinizing Hormone LH)

यह बड़े प्रोटीन हॉर्मोन है जो सामान्य परिसंचारण द्वारा गोनाडोट्रोप कोशिकाओं में उत्पन्न होते हैं। एल. एच. वृषण की लेडिग कोशिकाओं को पुरूषों में टेस्टोरोन बनाने के लिए उत्तेजित करता है तथा स्त्रियों में नब्ज में वृद्धि के साथ-साथ योनि की थेका कोशिकाओं (Theca cells) को टेस्टोरॉन और उससे कुछ कम मात्रा में प्रोजेस्टेरॉन (Progesterone) उत्पन्न करने के लिए उत्तेजित करता है। (Ovulation) में सहायता करता है।

5. प्रोलैक्टिन (Prolactin)

इसका लक्ष्य अंग (mammary glands) होता है यह स्तनों को दूध उत्पादन के लिए उत्तेजित करता है। प्रोलेक्टिन प्रजनन में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। प्रोलेक्टिन चयापचय के लिए भी महत्वपूर्ण है।

प्रोलेक्टिन गर्भावास्था के दौरान गर्भावस्था के अंत में भ्रूण के फेफड़ों को सरफेक्टेंट संश्लेषण (Surfactant synthesis) प्रदान करता है तथा भ्रूण की प्रतिरक्षा सहनशीलता में भी योगदान देता है।

6. फॉलीकल उद्दीपक हॉर्मोन (Follicle stimulating Hormone FSH)

यह पुरूषों और महिलाओं दोनों में ही बनता है।

महिलाओं में इस हॉर्मोन से अंडों का उत्पादन व पुरूषों में शुक्राणुओं का उत्पादन उत्तेजित होता है।

7. मेलेनोसाइट उद्दीपक हॉर्मोन (Melanocyte Stimulating Hormone MSH)

यह हॉर्मोन त्वचा एवं बालों में मेलेनोसाइट द्वारा मेलेनिन के उत्पादन को उत्तेजित करता है।

यह भूख एवं कामोत्तेजना पर भी प्रभाव ड़ालता है।

गर्भावस्था के दौरान यह हॉर्मोन बढ़ जाता है तथा गर्भवती महिलाओं में पिगमेन्टेशन (Pigmentation) वृद्धि का कारण बनता है।

पश्च खण्ड़ (Posterior Pitutary or Neurohypophysis)

पश्च खण्ड़ निम्न दो हॉर्मोन्स का निर्माण करता है-

1. ऑक्सीटोसिन (Oxytocin)

यह हॉर्मोन भी ए.डी.एच. की भाँति विभिन्न अमीनो एसिड्स से बना पेप्टाइड है, परन्तु दो अमीनो एसिड्स में कुछ भिन्नता रहती है।

ऑक्सीटोसिन हॉर्मोन प्रसव के दौरान गर्भाशयिक संकुचनों एवं प्रसव के उपरान्त शिशु के दुग्धपान के लिए दुग्ध निक्षेप को उद्दीप्त करता है। प्रसव के दौरान आक्सीटोसिन गर्भाशय की चिकनी पेशियों में संकुचन पैदा करता है। गर्भावस्था के अन्तिम दिनों में गर्भाशय ऑक्सीटोसिन के प्रति अत्यन्त संवेदनशील हो जाता है तथा प्रसव की प्रक्रिया के दौरान इसके स्राव की मात्रा बढ़ जाती है। प्रसव में शीघ्रता लाने के लिए सिन्थेटिक ऑक्सीटोसिन (पेटोसिन) का इन्ट्रावीनस इन्जेक्शन लगाया जाता है।

यह स्तनों की वाहिकाओं के आस-पास की मायोएपीथीलियमी कोशिकाओं को उद्दीप्त करके दुग्ध का निष्कासन करता है। मायोएपीथीलियमी कोशिकाएँ संकुचित होकर, स्तनों की दुग्ध एल्वीलाइ से दुग्ध वाहिकाओं के द्वारा चूचुकों में आ जाता है। नवजात शिशु के स्तन चूषण से आवेग मस्तिष्क में पहुँचते हैं जो हाइपोथैलेमस की तन्त्रिका कोशिकाओं को उद्दीप्त करते हैं जिससे ऑक्सीटोसिन स्रावित होने लगता है। स्तन चूषण करने के लगभग एक मिनट तक शिशु को दूध नहीं मिल पाता, किन्तु बार-बार जब ऑक्सीटोसिन स्रावित हो जाता है तो मायोएपीथीजियमी कोशिकाओं में संकुचन आरम्भ हो जाते हैं तथा चूचुक से दुग्ध प्रवाह होने लगता है।

यहाँ यह ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि ऑक्सीटोसिन दुग्ध निक्षेप को उद्दीप्त करता है, जबकि दुग्ध उत्पादन प्रोलेक्टिन के प्रभाव से होता है।

2. वैसोप्रेसिन (Vassopressin or Antidiuretic Hormone)

डायूरेटिक (diuretic) वह पदार्थ होता है जो मूत्र के विसर्जन को उद्दीप्त करता है, जबकि एन्टीडायूरेटिक मूत्र के विसर्जन को कम कर देता हैं।

एन्टीडायूरेटिक हॉर्मोन (ADH) या वेसोप्रेसिन भिन्न-भिन्न तरह के नौ (९) अमीनो एसिड्स से बना पेप्टाइड है। इसकी मुख्य भूमिका शरीर के द्रव्य सन्तुलन

के नियम में सहायता करना है। ADH के मुख्य लक्ष्य अंग (target organs) वृक्क होते हैं। यह वृक्कीय नलिकाओं की पारगम्यता को बढाकर शरीर में जल के पुनः अवशोषण को बढाता है जिससे कम मात्रा में मूत्र का विसर्जन होता है। यह हॉर्मोन कुछ मात्रा में वाहिका संकुचन भी पैदा करता है, फलस्वरूप रक्तचाप बढ जाता है, लेकिन मनुष्य में यह वाहिका संकुचन मुख्यतया कॉरोनरी रक्तवाहिकाओं में होता है।

ADH के अल्प स्रावण से जल का पुनः अवशोषण कम होता है जिससे बहुत ही पतले मूत्र की अत्यधिक मात्रा विसर्जित होती है तथा निरन्तर प्यास लगती है। इस स्थिति को डायबिटीज़ इन्सिपिडस कहते हैं। इस हॉर्मोन की कमी से रक्तचाप भी कम हो जाता है।

पीनियल ग्रन्थि (Pineal Gland)

पीनियल ग्रन्थि को पीनियल बॉडी या तीसरी आँख भी कहा जाता है। यह मस्तिष्क में एक छोटी अंतःस्रावी ग्रन्थि है। यह एक हॉर्मोन सेरोटोनिन (Serotonin) व्युत्पन्न मेलेटोनिन (Melatonin) उत्पन्न करती है जो कि निद्रा व चेतनावस्था के पैटन (pattern) को प्रभावित करता है। इसका आकार एक छोटे पाइन कोन (pine cone) जैसा होता है इसलिये इसका नाम पीनियल पड़ा है। यह मस्तिष्क के मध्य, दोनों गोलार्द्धो (hemispheres) बीच स्थित होती है। पीनियल ग्रन्थि एक चावल के दाने के आकार (5-8 mm) की होती है। इसका रंग लाल भूरा होता है। यह सुपीरियर कॉलीकुलस (superior colliculus) से रॉस्ट्रो-डॉर्सल (Rostro-dorsal) और स्ट्रिया मैडुलैरिस (Stria Medullasis) के नीचे स्थित होता है। यह एपीथैलेमस (Epithalamus) का एक भाग है और थैलमिक बॉडी (Thalmic bodies) के बीच लैटरली (Laterally) तैनात रहता है। पीनियल एक मिडलाइन संरचना है और अक्सर खोपड़ी के एक्स-रे में देखी जा सकती है क्योंकि यह अक्सर कैल्सीफाइड होती है।

कार्य

1. तंद्रा का कारण बनती है।
2. अंतः स्रावी ग्रन्थियों के कार्यो पर नियंत्रण करती है।
3. तंत्रिका तंत्र संकेतों को अंतःस्रावी संकेतों में बदलती है।
4. मेलेटॉनिन हॉर्मोन स्रावित करती है।

थाइरॉइड ग्रन्थि (Thyroid Gland)

थाइरॉइड ग्रन्थि ग्रीवा में श्वास प्रणाल (Trachea) के सामने निचले सर्वाइकल और प्रथम थोरेसिक वर्टिब्रा के स्तर पर स्थित रहती है। यह दो खण्डों के दोनों तरफ स्थित रहती है। एक सामान्य वयस्क में थाइरॉइड ग्रन्थि का वजन लगभग 25-40 ग्राम

तक होता है। थाइरॉइड ग्रन्थि के दोनों लोब(खण्ड) उतक के एक ब्रिज से जुड़े होते हैं, जिसे इस्थामस (Isthmus) कहते हैं।

थाइरॉइड ग्रन्थि की कार्यत्मक इकाई बहुत सारे आपस में जुड़े हुए फॉलिकल (Follicles) होते हैं। इन फोलिकल्स में एक गााढा चिपचिपा प्रोटिन पदार्थ भरा होता है जिसे कोलाइड कहते हैं। इस कोलाइड में थाइरॉइड हॉर्मोन संचित रहते हैं। थाइरॉइड ग्रन्थि दो फोलिक्यूलर कोशिकाओं फोलिक्यूलर और पैराफोलीक्यूलर कोशिकाओं से निर्मित होती है। फोलिक्यूलर कोशिकाएँ (Follicular cells) चारों ओर फैली हुई रहती है। यह थाइरॉइड हॉर्मोन थाइरॉक्सिन और ट्राइआयडो थाइरोनिन का निर्माण एवं स्रावण करती है, जो शरीर की अधिकाशं कोशिकाओं में उपापचय (Metabolism) को बढाते हैं। पैराफालिक्यूलर कोशिकायें फोलिक्यूलर कोशिकाओं की अपेक्षा कम और आकार में बड़ी होती है। इन्हें c-cell भी कहते हैं। यह कोशिकायें फोलिकल्स के मध्य समूह में पाई जाती हैं तथा केलिस्टोनिन नामक हॉर्मोन का निर्माण एवं स्रावण करती हैं।

कार्य-

थाइरॉइड निम्नलिखित तीन हॉर्मोन्स का स्रावण करता है-

1- T3

2- T4

3- TDH

T3 हॉर्मोन अथवा ट्राईआयडो थाइरॉक्सीन (Tri iodothyroxine)

(क) विकास एवं वृद्धि को प्रभवित करता है।

(ख) सामान्य उपापचय दर को नियंत्रित करता है।

(ग) कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन उपापचय को सम्पन्न करता है।

(घ) शारीरिक भार को नियन्त्रित करता है।

(ड़) मूत्र निर्माण में सहायक है।

(च) कोशिकाओं द्वारा ग्लूकोज के अन्त:ग्रहण हो बढाता है।

(छ) हृदय गति एवं श्वसन दर को नियन्त्रित करता है।

T4 हॉर्मोन अथवा थाइरॉक्सीन या टैट्राआयडोथाइरॉक्सीन (Tetraiodothyroxine)

इसके कार्य T3 हॉर्मोन के समान ही हैं, परन्तु यह थाइरॉइड स्राव का लगभग 90 प्रतिशत होता है जबकि T3 अधिक सांद्र और अधिक सक्रिय होता है।

TCT अथवा थायरोकैल्सिटोनिन (Thyrocalcitonin)

यह रक्त में कैल्शियम की सान्द्रता को कम करता है एवं bone mineral

metabolism का नियंत्रण करता है।

थाइरॉइड स्रावण की कमी एवं अधिकता का शरीर पर प्रभाव-

अधिकता से पड़ने वाला प्रभाव- थाइरॉइड ग्रन्थि की अति सक्रियता से हाइपर थाइरॉडिज्म (Hyperthyroidism) नामक स्थिति उत्पन्न हो जाती है। इस रोग में नेत्रोत्सेधी गलगण्ड (Exophthalmic goiter) हो जाता है। इस रोग के लक्षण से आँखें बाहर को उभर जाती हैं, नाडी गति बढ़ जाती है, त्वचा मुलायम और नम रहती है तथा गर्मी का अनुभव अधिक होता है आदि।

कमी के शरीर पर पड़ने वाला प्रभाव- थाइरॉइड ग्रन्थि के अल्प सक्रियता से अथवा ग्रन्थि से कम मात्रा में हॉर्मोन का स्रवण होने से 'हाइपो थाइरॉडिस्म' (Hypothyroid-ism) नामक स्थिति उत्पन्न हो जाती है। इस स्थिति में गर्भ में शिशु के विकास अथवा शैशवास्था के दौरान थाइरॉइड अल्पक्रियता से 'क्रेटिनिज्म' (जड़मानवता) नामक रोग हो जाता है। इस रोग में बुद्धि का ह्रास हो जाता है। बच्चों का विकास रूक जाता है। कंकालीय वृद्धि रूक जाती है, पेट बाहर को अधिक बढ जाता है आदि।

पैराथाइरॉइड/परिचुल्लिका ग्रन्थि (Parathyroid Gland)

पैराथाइरॉइड ग्रन्थि मसूर के दाने के आकार की चार छोटी-छोटी ग्रन्थियों का समूह हैं, जिनमें से प्राय: दो-दो थाइरॉइड ग्रन्थि के प्रन्येक खण्ड की पोस्टीरियर (पिछली सतह) में स्थित रहती है। ये लगभग 3-4 मि.मी. व्यास की होती है और पीले भूरे रंग की होती है। जिन कोशिकाओं से ये बनती हैं, वे spherical होती हैं और columns में व्यवस्थित होती है। इनका वजन 0.05 से 0.3 तक होता है।

कार्य-

यह ग्रन्थि शरीर में कैल्शियम के स्तर का संचालन करती है। इसका तात्पर्य यह है कि रक्त में कैल्शियम की अधिकता और कमी का नियंत्रण इसी के द्वारा सम्पादित होता है।

पैराथाइरॉइड ग्रन्थि से स्रावित होने वाला हॉर्मोन

इस ग्रन्थि से पैराथोर्मोन नामक हॉर्मोन स्रावित होता है, जिसका प्रमुख कार्य कैल्शियम और फॉस्फेट के मेटाबोलिज्म को नियंत्रित करना होता है। अस्थियों में जहाँ कैल्शियम और फॉस्फेट मिलकर अस्थि का निर्माण करते हैं, वहीं यह हॉर्मोन कैल्शियम और फॉस्फेट को अस्थि से रक्त में ले जाने का कार्य करता है।

किडनी में यह फॉस्फेट के निष्कासन को बढाता है। साम्यावस्था बनाये रखने

में यह हॉर्मोन महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है, जैसे–

1.यह शरीर के मेम्ब्रेन पारगम्यता को बनाये रखता है।

2. तंत्रिका, पेशीय एवं ह्दीय कार्यों को सुचारू रूप से चलाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

3. हाइपर कैल्शिमिया को नियन्त्रित करता है।

ग्रन्थि की सक्रियता से प्रभाव

अधिकता से प्रभाव–पैराथाइरॉइड ग्रन्थि की अति सक्रिता से हाइपर पैरेथाइरॉडिज्म (Hyperparathyroidisy) नामक स्थिति उत्पन्न हो जाती है। इस स्थिति में रक्त में फास्फोरस की मात्रा कम हो जाती है, परन्तु कैल्शियम की मात्रा अधिक हो जाती है। एसी स्थिति में अस्थियों से अधिक कैल्शियम का पुन: अवशोषण हो जाता है और रक्त में कैल्शियम की मात्रा अधिक हो जाती है। अस्थियों में कैल्शियम की कमी हो जाने से वह छिद्रमय और भुरभुरी हो जाती है। कैल्शियम की वृद्धि से पेशी और तंत्रिका उत्तेजनशीलता कम हो जाती है जिससे पेशियों में स्फूर्ति कम हो जाती है। मूत्र में फॉस्फोरस और कैल्शियम निकलने लगता है तथा गुर्दो में पथरी (renal calculi or stone) बन जाती है।

कमी से शरीर पर प्रभाव– पैराथाइरॉइड ग्रन्थि की अल्प सक्रियता से हाइपोपेराथाइरिडिस्म (Hypoparathyroidism) नामक स्थिति उत्पन्न हो जाती है। इस स्थिति के कारण रक्त में ca की मात्रा कम हो जाती है, जिसके परिणामस्वरूप टिटेनी (Tetany) नामक रोग हो जाता है। इस रोग में पेशीय कड़ापन और ऐंठन होती है, ह्दय की गति बढ़ जाती है, श्वास की गति बढ़ जाती है और बुखार की स्थिति उत्पन्न हो जाती है।

एड्रीनल या सुप्रारीनल ग्रन्थियां (Adrenal or suprarenal glands)

दो एड्रीनल या सुप्रारीनल ग्रन्थियां प्रत्येक वृक्क के ऊपरी एवं सामने के भाग पर स्थित रहती है। ये ग्रन्थियाँ तिकोने आकार की होती हैं। प्रत्येक ग्रन्थि का बाह्य भाग कार्टेक्स (Cortex) तथा आन्तरिक भाग (Medulla) कहलाता है। इन दोनों भागों से स्रावित हॉर्मोन्स अलग–अलग होते हैं व इनके कार्य भी अलग होते हैं।

1. एड्रीनल कार्टेक्स (Adrenal cortex) :-

2. एड्रीनल मेड्युला (Adrenal medulla):-

1. एड्रीनल कार्टेक्स (Adrenal cortex) :-

इनमें कई हार्मोन उत्पन्न होते हैं जिन्हें सामूहिक रूप से कार्टिकोस्टैरॉयड कहा जाता है। कार्टेक्स तीन भागों में विभाजित रहता है जिनमें निम्न तीन मुख्य वर्गों के स्टैरॉयड हॉर्मोन स्रावित होते हैं–

क. वाह्य क्षेत्र से मिनरलोकॉर्टिकायड्स

ख. मध्य क्षेत्र से ग्लूकोकॉर्टिकायड्स

ग. आन्तरिक क्षेत्र से सेक्सहॉर्मोन या गोनाडोकॉर्टिकॉयड्स

क. मिनरलोकॉर्टिकायड्स (Mineralocorticoids) :-

इनके अन्तर्गत इल्डोस्टेरोन तथा डीहाइड्रोइपीएण्ड्रोस्टेरोन दो हार्मोन्स का समावेश होता है जिनमें एल्डोस्टेरोन प्रमुख है। इसका कार्य शरीर में सोडियम एवं पोटेशियम के सन्तुलन को बनाए रखना है।

ख. ग्लूकोकॉर्टिकॉयड्स (Glucocorticoids) :-

ये रक्त शक्ररा की सान्द्रता को नियंत्रित करने में सहायता करते हैं ये निम्न दो तरह के होते हैं-

कार्टिसोल या हाइड्रोकॉर्टिसोन कॉर्टिकोस्टीरॉन सभी तरह के भोज्य पदार्थो के यपापचय को प्रभावित करते हैं, एन्टी इन्फ्लेमेटरी ऐजेन्ट की भांति कार्य करते हैं, वृक्क को प्रभावित करते हैं तथा शारीरिक अथवा मानसिक तनावों को कम करते हैं। ये यकृत द्वारा संग्रह किए गये प्रोटीन को ग्लाइकोजन में परिवर्तित करते हैं और कोशिकाओं द्वारा ग्लूकोज के उपयोग को कम करते हैं। जिससे रक्तशर्करा स्तर बढ़ जाता है लेकिन यह पेन्क्रियाज द्वारा स्रावित इन्सुलिन के प्रयोग से सन्तुलित रहता है। इनके अतिस्रावण से कुशिगं रोग उत्पन्न हो जाता है।

ग. गोनाडोकॉर्टिकॉयड्स (Gonadocorticoids) :-

इसके अन्तर्गत एण्ड्रोजन (Androgen), ईस्टोजन (Oestrogen) तथा प्रोजेस्टेरोन (Progestrone), इन तीन लिगं हॉर्मोन का समावेश होता है। जिनका सम्बन्ध जनन तथा लैंगिक विकास से होता है।

एड्रीनल मेडुला (Adrinal medulla) :-

यह एड्रीनल ग्रन्थि का आन्तरिक भाग होता है जो कॉर्टेक्स से पूर्ण रूप से ढका होता है। इससे कैटीकोलामाइन (Catecholamines) अर्थात एड्रीनलीन या एपीनेफ्रीन तथा नॉरएड्रीनलीन या नॉरइपीनैफ्रीन दो हॉर्मोन्स उत्पन्न होते हैं।

एड्रीनल या इपीनेफ्रीन के कार्य:-

-कंकालीय पेशियों एवं अन्तरंग (viscera) की रक्तापूर्ति करने वाली धमनियों (arteriols) को विस्तारित करता है

-हृदीय धड़कन की दर एवं शक्ति को बढ़ाता है। हृदय से रक्त की निकासी (cardiac output) को बढ़ाता है।

- श्वास नलिकाओं को विस्तारित करता है तथा श्वास दर (respiratory rate) को बढ़ाता है।

-कंकालीय पेशियों में होने वाली थकान की दर को घटाता है।

–चयापचयी दर को बढ़ता है आदि।

नॉरएड्रीनलि या नॉरइपीनेफ्रीन के कार्यः–

–हृदय की रक्तवाहिकाओं को विस्तारित करता है तथा अन्य अंगों में वाहिकासंकुचन करता है। हृदीय धड़कन की दर एवं इसकी रक्त निकासी को बढ़ाता है।

–परिसरिय वाहिकासंकुचन करके रक्तचाप को बढ़ाता है।

–जठरान्त्र पथ की चिकनी पेशी को शिथिल करता है।

–लिपिड़ चयापचय को बढ़ाता है तथा वसा ऊतक से उन्मुक्त वसीय अम्लों को मुक्त करता है।

अग्नाशयिक द्वीपिकाएँ या लैंगरहेन्स की द्वीपिकाएँ–

वयस्क पैक्रियाज में 2,00,000 एवं 20,00,000 के बीच अग्नाशयिक द्वीपिकाएँ विद्यमान रहती हैं जो सम्पूर्ण ग्रन्थि में छितराई हुई फैली रहती हैं। द्वीपिकाओं में चार विशेष प्रकार की कोशिकाएँ जिन्हें एल्फा, बीटा, डेल्टा तथा एफ कोशिकाएँ कहा जाता है। इनमें से एल्फा कोशिकाएँ ग्लूकेगॉन नामक हॉर्मोन उत्पन्न करती हैं जो यकृत को उद्‌दीप्त करके ग्लाइकोजन को ग्लूकोज में परिवर्तित कर देती हैं जिससे रक्त में ग्लूकोज का स्तर बढ़ जाता है।

बीटा कोशिकाएँ इन्सुलिन नामक हॉर्मोन उत्पन्न करती हैं जो रक्त में विद्यमान ग्लूकोज को ग्लाइकोजन में परिवर्तित करता है, तदुपरान्त यह यकृत में संचित हो जाता है। इन्सुलिन शरीर की ऊतक कोशिकाओं की पारगम्यता को बढ़ाता है जिससे रक्त से ग्लूकोज कोशिकाओं में पहुँच जाता है इन्सुलिन एवं ग्लुकेगॉन दोनों हॉर्मोन्स प्रायः एक दूसरे के विपरीत कार्य करते हैं जिससे रक्त में ग्लूकोज का स्तर सामान्य बना रहता है। डेल्टा कोशिकाएँ सोमेटोस्टेटिन नामक हॉर्मोन स्रावित करती हैं जो अग्रपिट्‌यूटरी ग्रन्थि से वृद्धि हॉर्मोन को मुक्त होने में बाधा उत्पन्न करता है तथा ग्लूकेगॉन एवं इन्सुलिन दोनों के स्राव को भी रोकता है। एफ कोशिकाएँ अग्नाशयिक पॉलिपेप्टाइड स्रावित करती है जो भोजन के उपरान्त रक्तधारा में पहुँचता है, परन्तु इसके अन्तःस्रावी कार्य अभी अज्ञात हैं।

थाइमस ग्रन्थि–

थाइमस ग्रन्थि वक्षीय गुहा में स्टर्नम के पीछे श्वसप्रणल के विभाजन के विभजन के स्तर पर स्थित एक लिम्फॉयड अंग है। इसमें दो खण्ड होते है जो संयोजी ऊतक की एक परत से आपस में जुड़े रहते हैं। यह उम्र के अनुसार भिन्न–भिन्न आकार की होती है। जब तक बालक की उम्र दो वर्ष की नहीं हो जाती है तब तक बढती रहती है, उसके बाद यह सिकुड़ती जाती है, अतः वयस्क में यह मात्र तन्तुमय अवशेष की अवस्था में पायी जाती है।

वृषण :-

वृषण पुरूष की जनन ग्रन्थियाँ हैं जो शुक्राणुओं का उत्पादन करती हैं। वयस्कों में प्रत्येक वृषण अण्डाकार आकृति का होता है। ये वृषणकोश में दोनों ओर वृषण रज्जुओं द्वारा लटके रहते हैं। प्रत्येक वृषण में 800 से अधिक कसी हुई कुण्डलित सूक्ष्म नलिकाएँ होती हैं, जिन्हें **शुक्रजनक नलिकाएँ** कहते हैं, जो एक स्वस्थ व्यक्ति में प्रत्येक सेकण्ड़ में हजारों शुक्राणु उत्पन्न करती हैं।

वृषण के हार्मोन व उनके कार्य

वृषण का अन्त: स्रावी भाग कोशिकाओं के एक समूह से बना होता है, जिन्हें इन्टरस्टीशियल कोशिकायें कहते हैं। इन इन्टरस्टीशियल कोशिकाओं से पुरूष सेक्स हॉर्मोन **टेस्टोस्टीरॉन (Testosterne)** व **एंडोस्टीरोन (Andosterone)** स्रवित होते हैं जो कि सेकेण्ड्री सैक्सुअल कैरेक्टर्स के लिए उत्तरदायी होते हैं।

डिम्ब ग्रन्थियाँ:-

पुरूष की जनन ग्रन्थियों की भाँति स्त्री में दो डिम्ब ग्रन्थियाँ होती हैं जो डिम्ब एवं स्त्री हॉर्मोन उत्पन्न करती हैं। ये लगभग बादाम के आकार एवं आकृति की हल्के भूरे रंग की ग्रन्थियाँ हैं, जो उदर गुहा के निचले भाग में (श्रोणि क्षेत्र) में गर्भाशय के दानों तरफ डिम्बवाहिनियों के पीछे एवं नीचे स्थित रहती हैं।

डिम्ब ग्रन्थि के हार्मोन एवं उनके कार्य

वृषण की भॉति ही डिम्ब ग्रन्थि के अन्त:स्रावी भाग से तीन हॉर्मोन का स्राव होता है, जिनका वर्णन निम्नवत् है-

क. ईस्ट्रोजन (Estrogen)

- ये स्टेरॉयड हॉर्मोन का समूह होता है। यह डिम्बोत्सर्जन से पहले विकासात्मक फॉलिकल के थीकाइन्टर्ना (Theca inerna) द्वारा स्रावित होता है और डिम्बोत्सर्जन के बाद Theca cell द्वारा स्रावित होता है। यह गर्भवती महिलाओं में placentaके द्वारा भी स्रावित होता है।
- यह स्त्रि जनन अंग जैसे फेलोपीन ट्यूब, यूट्रस, वेजाइना की वृद्धि और सामान्य कार्यक्षमता के लिये उत्तरदायी है, आदि।

ख. प्रोजेस्ट्रॉन (Progestrone)

- यह गर्भावस्था के दौरान डिम्बोत्सर्जन की क्रिया पर नियंत्रण लगाता है।
- गर्भावस्था के दौरान दुग्ध ग्रन्थियों के विकास के लिये उत्तरदायी है, आदि।

ग. रिलैक्सिन हॉर्मोन (Relaxin Hormone)

- यह हॉर्मोन गर्भाधान के अन्त में स्रावित होता है। इसका कार्य पेल्विक लिगामेंट को

शिथिलता प्रदान करना है ताकि प्रसव ठीक से हो सके।

प्रश्न-पत्र का प्रारुप

शरीर रचना एवं क्रियाविज्ञान

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. 'जीव कोशिका' के प्रमुख अंगों को चित्र द्वारा दर्शाकर इसके कार्यों की चर्चा कीजिए।
2. अस्थि की रचना व कार्य लिखिए। अस्थि पर योग के प्रभाव का उल्लेख कीजिए।
3. श्वसन तन्त्र की संरचना एवं क्रिया का वर्णन करते हुए प्राणायाम का प्रभाव स्थापित कीजिए।
4. चुल्लिका ग्रन्थि की रचना, क्रिया एवं उस पर योगिक क्रियाओं का प्रभाव लिखिए।

लघुत्तरीय प्रश्न

1. मन के कार्यों का वर्णन कीजिए तथा मन के नियमन के उपाय लिखिए।
2. पेशीय तन्त्र की संरचना एवं उनके कार्यों पर प्रकाश डालिए।
3. फीमर किस प्रकार की हड्डी है? उसका कार्य क्या है?
4. थायरॉइड ग्रन्थि की कार्यप्रणाली एवं इस पर योग के प्रभाव को समझाइए।

अति लघुत्तरीय प्रश्न

1. पिट्यूटरी ग्रन्थि कहाँ स्थित है?
2. अनुलोम-विलोम प्राणायाम का श्वसन तन्त्र पर क्या प्रभाव पड़ता है?
3. मन के स्थानों का वर्णन कीजिए।
4. रेखित व अरेखित पेशियों का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।
5. मानव शरीर में कितने प्रकार की सन्धियाँ पायी जाती है?

उत्तराखण्ड संस्कृत विश्वविद्यालय
योगाचार्य (योगविज्ञान में द्विवर्षीय स्नातकोत्तर उपाधि) एवं
पी.जी. डिप्लोमा (योगविज्ञान में एकवर्षीय स्नातकोत्तर उपाधि)

प्रथम सेमेस्टर (चतुर्थ प्रश्न–पत्र)

हठयोग के सिद्धान्त
पाठ्यक्रम

अङ्क : ८०/२० **समय : ३ घण्टे**

इकाई विवरण

१. मानव शरीर का सामान्य परिचय - शरीर की परिभाषा, कोषाणु, ऊतक, अस्थि व पेशी तन्त्र की रचना व क्रिया तथा योग का प्रभाव।

२. पाचन व उत्सर्जन तन्त्र की रचना व क्रिया तथा उस पर योग का प्रभाव।

३. तन्त्रिका तन्त्र एवं ज्ञानेन्द्रियों की रचना एवं क्रिया तथा उन पर योग का प्रभाव।

४. प्रजनन तन्त्र एवं अन्तः स्रावी ग्रन्थियों की रचना व क्रिया तथा उन पर योग का प्रभाव।

अंक विभाजन - प्रश्न–पत्र में तीन खण्ड होंगे। प्रथम खण्ड में चार में से दो प्रश्नों के उत्तर देने होंगे, प्रत्येक प्रश्न २० अंक का होगा। द्वितीय खण्ड में भी चार में दो प्रश्न हल करने होंगे, प्रत्येक प्रश्न १० अंक का होगा। तृतीय खण्ड में सभी पांच प्रश्न अनिवार्य होंगे, प्रत्येक प्रश्न ०४ अंक का होगा।

प्रत्येक प्रश्न–पत्र में २० अंक सत्रीय मूल्यांकन हेतु निर्धारित है।

उत्तराखण्ड संस्कृत विश्वविद्यालय
योगाचार्य (योगविज्ञान में द्विवर्षीय स्नातकोत्तर उपाधि)

प्रथम सेमेस्टर (चतुर्थ प्रश्न–पत्र)

हठयोग के सिद्धान्त
पाठ्यक्रम

अङ्क : ८०/२० **समय : ३ घण्टे**

इकाई विवरण

१. **मानवीय कोशिका**- संरचना व इसके विभिन्न अवयवों के कार्य, ऊतक व प्रकार तथा कार्य। शरीर की परिभाषा, शरीर का षडंगत्व, पुरूष के आयुर्वेदोक्त चार भेद, चेतना धातु पुरूष, पंच विंशति पुरूष, षडधातु पुरूष, मन की

परिभाषा, मन की उत्पत्ति, मन का स्थान, मन का निग्रह, मन के कर्म के संदर्भ में ध्यान समन्वय।

२. अस्थि तन्त्र, अस्थि की परिभाषा, अस्थि के भेद, अस्थि की संख्या, अस्थि की रचना, अस्थि के कार्य, तरूणास्थि का स्थान, तरूणास्थि के भेद और कार्य, सन्धि स्थल, प्रकार, घुटने व कशेरूका सन्धि स्थल की रचना, अस्थि पर योग का प्रभाव।

३. **पेशीतन्त्र**- मांस धातु की परिभाषा व उत्पत्ति, पेशी का परिचय, पेशियों की संख्या व शरीर की इन प्रधान पेशियों का संक्षिप्त परिचय यथा फ्रन्टेलिस, आक्सीपीटेलिस, टैम्पोरेलिस, स्टरनोक्लीडोमैस्टायड, लैटिसमस, डोरसा, ट्रपीजियस, रैक्टस, एबडोमिनिस, डायाफ्राम, डैल्टायड, वाइसैप्स, ट्राईसैप्स, ग्लूटियस मैक्सीमस, फेमोरेलिस, सारटोरियस, गैस्ट्रोक्नीमियस। पेशी के भेद, पेशी की रचना, पेशी के कार्य, योग का पेशी तन्त्र पर प्रभाव।

४. **श्वसन तन्त्र**- श्वसन की परिभाषा, श्वसन के भेद, श्वसन तन्त्र की रचना, श्वसन की क्रिया-वाह्य व आन्तरिक, गैसों का परिवहन, श्वसन क्रिया की नियंत्रण प्रक्रियायें। श्वसन क्षमताएं व आयतनों की संक्षिप्त जानकारी, श्वसन तन्त्र पर योग का प्रभाव। प्राण की परिभाषा और भेद, प्राणायाम का महत्व।

५. अन्त:स्त्रावी तन्त्र- अन्त:स्त्रावी व बहिस्त्रावी ग्रन्थियां, एन्जाइमस व हार्मोन में अन्तर, पीयूष ग्रन्थि, पिनियल ग्रन्थि, परिचुल्लिका ग्रन्थी, चुल्लिका ग्रन्थि, थायमस ग्रन्थि, अग्नाशय तथा एड्रीनल ग्रन्थि, डिम्ब व अण्डकोष ग्रन्थियों की स्थिति, हार्मोन व उनके कार्य, योग का अन्त:स्त्रावी ग्रन्थियों पर प्रभाव।

अंक विभाजन - प्रश्न-पत्र में तीन खण्ड होंगे। प्रथम खण्ड में चार में से दो प्रश्नों के उत्तर देने होंगे, प्रत्येक प्रश्न २० अंक का होगा। द्वितीय खण्ड में भी चार में दो प्रश्न हल करने होंगे, प्रत्येक प्रश्न १० अंक का होगा। तृतीय खण्ड में सभी पांच प्रश्न अनिवार्य होंगे, प्रत्येक प्रश्न ०४ अंक का होगा।

प्रत्येक प्रश्न-पत्र में २० अंक सत्रीय मूल्यांकन हेतु निर्धारित है।